सुख का धाम

स्वर्गाश्रम-गृहस्थाश्रम



ओ३म्
असतो मा सद्गमय-तमसो मा ज्योतिर्गमय-मृत्योर्मामृतं गमय।
''कृण्वन्तो विश्वमार्यम्''
''श्रद्धा साहित्य प्रकाशन का ४१वाँ पुष्प''

सुख का धाम

स्वर्गाश्रम-गृहस्थाश्रम

लेखक-वेदरत्न, प्रो० रामप्रसाद वेदालङ्कार
उपकुलपति (Pro-Vice-Chancellor)
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, (उ०प्र०)
आचार्य गोवर्धन शास्त्री स्मृति पुरस्कार (१९८१) से सम्मानित
एवं पुरस्कृत, द्वारा-'संगढ़ विद्यासभा ट्रस्ट, जयपुर।
आर्य साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट सेवाओं के उपलक्ष्य में
सम्मानित एवं पुरस्कृत (१९८३ में) द्वारा महर्षि दयानन्द
निर्वाण शताब्दी समारोह समिति, अजमेर।
वेदरत्न-मानद उपाधि (१९८४ में) द्वारा-विश्ववेद परिषद्।
'शान्ति' पुरस्कार से पुरस्कृत एवं सम्मानित (१५ अगस्त १९९३)
द्वारा-आर्य समाज, शालीमार बाग, दिल्ली।
वैदिक साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट सेवाओं के उपलक्ष्य में
सम्मानित एवं पुरस्कृत २४ फरवरी सन् ९५,
द्वारा-वैदिक यज्ञसमिति पानीपत (हरियाणा)

पता-वेदरत्न, प्रो० रामप्रसाद वेदालंकार
५१२ वेद सदन, आर्य नगर, ज्वालापुर, ज़ि०-हरिद्वार
पिन-249407 (S.T.D. Code No 0133 Ph.: 426095

प्रकाशक- **श्रीमती सरोज आर्या. अध्यक्ष**
''श्रद्धा साहित्य प्रकाशन'' ५१२ वेद सदन, आर्य नगर, ज्वालापुर।
प्र० संस्करण ४०००, दयानन्दाब्द-१७०, वि० सम्वत् २०५० जनवरी १९९४
द्वि० संस्करण ४०००, दयानन्दाब्द-१७१ वि० सम्वत् २०५१ अक्तूबर १९९५

नोटः-पुस्तक विक्रेता आदि को श्रद्धा साहित्य प्रकाशन के लिये १५.०० पैसे दान देकर भी यह पुस्तक प्राप्त की जा सकती है।

विषय सूची

मूल्य-"श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" से सरल-सुबोध रूप में प्रकाशित होने वाला वैदिक साहित्य दानी महानुभावों के दान से प्रकाशित होता है और सुपात्रों को प्रदान करने का प्रयास किया जाता है। पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना इसका मूल्य है।

जो महानुभाव इस सरल सुबोध वैदिक साहित्य को उपयोगी समझ कर मंगवाना चाहें और इसमें यथाशक्ति अपनी श्रद्धा के अनुसार अपना आर्थिक सहयोग प्रदान करना चाहें, वे कृपया लेखक या अध्यक्ष के पते पर व्यक्तिगत नाम से ड्राफ्ट, चैक या मनीआर्डर भेजें या पत्र व्यवहार करें। न्यून से न्यून २०० रुपये तक के दान या मासिक दान की राशि किसी एक पुस्तक की दान सूची में प्रकाशित की जायेगी, शेष फुटकर दान के रूप में।

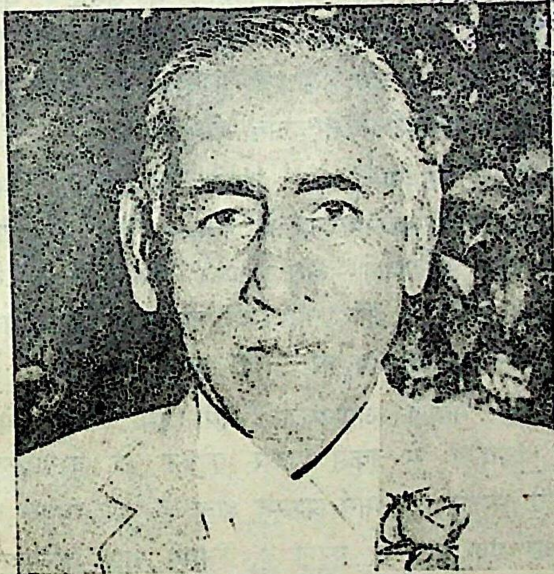
समर्पण

जिस महान् परमेश्वर एवं पूजनीय गुरुजनों के प्रदान किये हुए ज्ञान के आधार पर मैं "श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" का यह ४९वाँ पुष्प "सुख का धाम स्वर्गाश्रम-गृहस्थाश्रम" नामक पुस्तक आपके कर कमलों तक पहुँचा सका, उन्हीं के पावन चरणों में मेरा यह अल्प प्रयत्न समर्पित है।

नोट:- पुस्तक विक्रेता आदि को 'श्रद्धा साहित्य प्रकाशन' के लिये १५.०० रू० दान देकर भी यह पुस्तक ली जा सकती है।

स्वनामधन्य स्व० ईश्वरचन्द्र आर्य

[एक सरल परिचय]



स्व० आर्यजी का जन्म जिला डेरा गाजी खां (पाकिस्तान) के अन्तर्गत पीहड़ नामक ग्राम में दि०२६ अगस्त १९२९ को हुआ था। आपकी पूंज्या माता आसीबाई जी की गायत्री जपानुष्ठान में प्रबल श्रद्धा थी, उन्हीं से आपको गायत्री जप के संस्कार मिले।

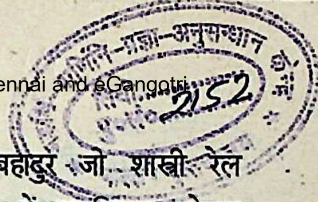
आप पूज्य महात्मा प्रभुआश्रित जी एवं आदरणीय स्वामी योगेश्वरानन्द जी के अनन्य भक्तों में से एक थे। आपने इन्हें 'गुरु' रूप में वरण कर लिया था। इन्हीं की सत्प्रेरणा से आपके गायत्री जप निष्ठा में और भी निखार आया तथा यज्ञ एवं

स्वाध्याय में भी आपकी विशेष रुचि जगी। अपने श्री गृह 'यज्ञ सदन' (३/५१ पश्चिमी पंजाबी बाग) में समय-२ पर विशिष्ट वैदिक विद्वानों के आचार्यत्व में यज्ञों के विशेष आयोजन आप करते रहते थे। स्वाध्याय, साधना के साथ ही वैदिक सत्साहित्य वितरण में भी आपकी विशेष रुचि थी।

गायत्री साधना से इनको श्रद्धा, आत्मविश्वास, कर्तव्य-निष्ठा, परोपकार-भावना के विकास के साथ ही समाज सेवा की प्रेरणा भी मिली। अतः गायत्री जपानुष्ठान को वे अपनी जीवन-निधि मानते थे और इसे सभी को बांटते रहते थे। अर्थात् दूसरों को भी गायत्री जप का 'व्रती' बनाते थे।

सविधि गायत्री जपानुष्ठान और उससे प्राप्त प्रेरणा के अनुसार आचरण से किस प्रकार जीवन का कायाकल्प होकर मानव की समृद्धि का मार्ग प्रशस्त होता है, इस विषय पर उनके जीवन की एक प्रेरणाप्रद घटना है, जिसमें आप आत्महत्या करने जा रहे जीवन से निराश एक गुजराती विद्यार्थी को सविधि गायत्री जप की प्रेरणा करते हैं। लगभग १० वर्ष बाद वही युवक उन्हें एक स्टेशन पर पुनः मिलता है। इन्हें देखते ही वह बोला - मैं वही विद्यार्थी हूँ। आपकी कृपा से गायत्री जपानुष्ठान से प्राप्त कर्तव्य प्रेरणा से आज विपुल श्री-समृद्धि का स्वामी हूँ, स्वस्थ सुखी, और और यशस्वी जीवन जी रहा हूँ।

इस प्रकार वे जब भी अपने व्यावसायिक कार्य से बाहर जाते तो चलते-फिरते वे प्रचारक के रूप में सबको यज्ञ, योग, वेद-स्वाध्याय और गायत्री साधना की प्रेरणा करते रहते थे।



एक और घटना, जब स्व० लाल बहादुर जो शास्त्री रेल विभाग के मन्त्री थे, घटित हुई थी। दक्षिण में झड़चिउल स्टेशन पर एक बहुत बड़ी दुर्घटना हुई थी। रेलवे पुल टूट जाने से गाड़ी के अनेक डिब्बे उफनती हुई नदी में गिर पड़े थे। इसी गाड़ी में हमारे आर्य जी भी थे। वे जब आगे के डिब्बे में चढ़ने लगे तो भीड़ ने बैठने नहीं दिया, फलतः पीछे के डिब्बे में कठिनाई से स्थान मिला। भाग्य की विडम्बना! आगे के डिब्बे ही एन्जिन समेत नदी में गिरे। हजारों यात्री मृत्यु की गोद में सो गये। वह दृश्य देखकर श्री आर्य जी के मुख से सहसा ये शब्द निकल पड़े-ईश्वर ने ईश्वर (आर्य जी) को बचा लिया' यों प्रभु भक्ति में उनकी श्रद्धा और भी सजीव हो उठी।

उन्होंने अपने गृह 'यज्ञ सदन' की नींव में चारों वेद रखाये थे। अन्य कक्षों के साथ ही उन्होंने 'यज्ञशाला' - (उपासना कक्ष) का निर्माण भी बड़ी श्रद्धा से करवाया।

अपनी कर्त्तव्य-निष्ठा से आप आर्यसमाज पंजाबी बाग, सहदेव आर्य पब्लिक स्कूल के अनेक बार प्रधान बने। वह डी० ए०वी० कालेज कमेटी नई दिल्ली, मोहन आश्रम हरिद्वार, योग निकेतन ट्रस्ट पंजाबी बाग के भी सदस्य रहे। वे निरन्तर ऐसे आयोजन करते रहते थे जिससे साथियों और परिवारों में यज्ञयोग स्वाध्याय के प्रति रुचि जगे। दि० १९२९-८९ को लगभग ६० वर्ष की आयु में धर्म पत्नी, दो भाई, दो बहिनों, पांच पुत्रों और पुत्रवधुओं को बिलखता हुआ छोड़ कर आपने अपने विशाल आर्य परिवार से चिर विदाई ले ली!

ईश्वर की असीम कृपा से उनके सात्विक उदार, भक्ति परायण और याज्ञिक जीवन की छाप उनके परिवार में भी पूर्णतया है। उनके अनुज कर्मवीर श्री ओमप्रकाश जी आर्य तथा स्व० ईश्वरचन्द्र आर्य जी की धर्मपत्नी माता कमलेश जी, पुत्र श्री विजय जी, विनय जी, योगेश जी, राजेश जी, राजीव जी, तथा पुत्र-वधुओं—क्रमशः शशि जी, मीना जी, नीलम जी, वर्षा आर्या, पूजा आर्या, सभी वैदिक भावनाओं से ओत-प्रोत हैं तथा उनकी धार्मिक और समाज सेवी प्रवृतियों को स्वजीवन, साधना और उदारता से आगे बढ़ा रहे हैं। अभी इन्होंने २१ सहस्र की सात्विक राशि स्व० आर्य जी के नाम से स्थिर निधि की स्थापना के रूप में वैदिक मिशनरी आर्य गुरुकुल (श्री विरजानन्द ट्रस्ट) मथुरा को बड़ी भावना से प्रदान की है। स्व० आर्य जी की भावनानुसार प्रति वर्ष उत्तमोत्तम साहित्य को प्रकाशित करते रहने के क्रम में ही यह ओंकार उपासना' जैसा सुन्दर पुष्प प्रभु भक्त मानव प्रजा की सेवा में इस आदर्श वैदिक परिवार की ओर से प्रस्तुत किया गया। अब नवम्बर १९९५ में यह परिवार स्व० श्री ईश्वर चन्द्र जी आर्य की पुण्य स्मृति में वेदरत्न प्रो०राम प्रसाद की लिखित पुस्तक "सुख का धाम स्वर्गाश्रम गृहस्थाश्रम" का द्वितीय संस्करण प्रकाशित करवा रहे हैं। इसके स्वाध्याय से यदि स्वाध्यायशील महानुभावों को अपने घर-परिवार को स्वर्ग-सुख का धाम बनाने में सहयोग मिला तो लेखक अपनी लेखनी और यह प्रकाशक आर्य परिवार अपने अर्थ को सार्थक समझेगें।



भूमिका

''सुख का धाम-स्वर्गलोक-स्वर्गाश्रम'' सचमुच यह गृहस्थाश्रम ही है। वेद शास्त्रों के आधार पर यह गृहस्थाश्रम-स्वर्गाश्रम-सुख का धाम होने पर भी आज यह नरक-नरकाश्रम-दुःख का धाम बना हुआ है। इसका कारण संसार की ये वस्तुएँ नहीं हैं वरन् हम हैं, हमारी ये कुत्सित वृत्तियाँ हैं, हमारे ये कुत्सित चिन्तन हैं, हमारे ये विकृत-दूषित विचार हैं।

आज भी गंगा ठीक वैसे ही बह रही है जैसे कि कभी पहले बहा करती थी; आज भी यमुना वैसे ही बह रही है जैसे कि कभी पहले बहती थी; आज भी पहिले की भांति रावी, चनाब, सतलुज, ब्यास तथा सिन्धु आदि नदियाँ वैसे ही बह रही हैं जैसे कि कभी पहिले बहती थीं। आज भी ये मनुष्य वा कोई अन्य प्राणी अपनी प्यास बुझाने को इनके तट पर जाते हैं तो ये नदियाँ उनकी प्यास बुझाती हैं। यदि वे गर्मी के मारे, धूप से व्याकुल हुए-हुए इनके समीप जाते हैं, तो ये नदियाँ उन्हें स्नान कराकर उनके तन की तपश मिटाती हैं। आज भी पूर्व की भांति वृष्टि होती है, उसके जल से लबालब भरी हुई ये नदियाँ जिधर को भी निकल पड़ती हैं, उधर के खेतों को हरा-भरा कर देती

हैं, उनको फूल-फ़लों से, शाक-भाजियों से, गेहों, चनों औ चावल आदि नानाविध अन्नों से लाद देती हैं। आज भी पहिले की तरह कन्द-मूलों से इस धरती को ये भर देती हैं। आज भी पूर्व की भांति यह चन्द्रमाँ उदय होता है और अपनी शीतल चन्द्रिका से सब औषधि-वनस्पतियों में, फूल-फ़लों आदि में रस भरता है और फ़िर इसका बड़ा भाई सूर्य आकर इन सब शाक-भाजियों, फ़लों और अन्नों को पकाता है। आज भी ये कीट, पतङ्ग, पशु, पक्षी और ये सब मनुष्य अपनी पूर्व पीढ़ी से जनम लेकर, उनसे लाड-प्यार और पालन-पोषण पाकर आने वाली नई पीढ़ियों को जन्म दे रही हैं, और उनका लाड-प्यार-स्नेह से लालन-पालन कर रही हैं। आकाश भी वही है, धरती माता भी वही है, जो वसुन्धरा के रूप में सब प्राणियों के लिए अपने भीतर नाना विध वास के हेतुभूत साधनों को धारण किये हुए हैं। भेड़- बकरी, गाय-भैंस आदि भी वही हैं जो घास-पात खाकर सबको अमृत तुल्य दुग्ध प्रदान कर रही हैं। बैल, घोड़े, गधे, खच्छर आदि आज भी घास-पात चर कर सबको सवारी दे रहे हैं, सबके शकट-गाड़ियों और रथ-तांगों आदि को खींच रहें हैं, बैल भी पूर्व की भांति आज भी हल जोत रहे हैं, भेड़ें दिल खोलकर पूर्व की भांति ऊन देकर हमारे शरीर की सर्दी मिटा रही हैं। धरती माँ कपास देकर हमारे तन की केवल लाज ही नहीं ढक रही हैं वरन् हमें सर्दी-गर्मी से भी बचा रही है। आज भी पूर्व की भांति वृक्षों की डालियों पर आम, अमरूद, अनार, अञ्जीर, अंगूर, सेब-सन्तरे, माल्टे-मोसमी,

चीकू-पपीते, आलूचे-आलुबुखारे, ज़रदालु और खुबानी आदि फ़ल लदे हुए दिखाई देते हैं। आज भी बेलों पर अंगूर के गुच्छे के गुच्छे दिखाई देते हैं, लताएँ खरबूजों-तरबूजों और सरदों आदि से लदी हुई दिखाई देती हैं। आज भी नाना प्रकार की लताओं पर चने, लोबिया, मटर आदि आदि की अगणित फ़लियाँ जब हम देखते हैं तो हम फूले नहीं समाते हैं, आदि आदि। आज भी सर्वत्र ये प्यारी-प्यारी चिड़ियाँ चहचहाती हैं, कोयलें अपनी कू-कू की मधुर ध्वनि से सबको आकर्षित करती हैं, ये मयूर अपने नृत्यों से सबको मोह लेते हैं। आज भी गौएँ अपने बच्छडों को जब स्नेह से निहारती हैं तो स्नेह वश उनका दूध रिसने लगता है। आज भी हिरण का भोलापन और सिंह का सिंहत्व मनुष्य को देखने को मिलता है। आज भी पहिले की तरह इन घर-परिवारों में जब ये प्यारे-प्यारे बच्चे खेलते-कूदते और किलकारियाँ मारते हैं तो ये मातायें उन्हें देख-देख कर फूली न समाती हुई उन पर बलि-बलि जाती हैं, और ये पिता भी अपने को धन्य-धन्य मानते हैं। पत्नियाँ आज भी जब अपने प्रिय पतियों को प्राप्त करती हैं तो वे उन्हें घर की ओर से निश्चिन्त कर देती हैं, पति पत्नियों को प्राप्त करते हैं तो वे उन्हें सर्वथा सर्वदा कमाने से निश्चिन्त कर देते हैं। आज भी दादी-दादा, नानी-नाना वैसे ही घरों में रह कर घर के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होते हैं, और अपने मधुर प्रिय कहानी-किस्सों से पोती-पोतों और दोहती-दोहतों के मन को मोह लेते हैं। आज भी इन घरों में परस्पर सब में अपनत्व है-प्यार

है-मुहब्बत है, आपस में एक दूसरे के लिए त्याग है-तप है, दौड़-धूप है, इत्यादि। परन्तु फ़िर भी कभी जिन गृहों को-जिन घर-परिवारों को श्रेष्ठ स्वर्ग-स्वर्गलोक-स्वर्गाश्रम-सुख का धाम समझा जाता था-सुख का स्थल माना जाता था और सचमुच तब वे ऐसे होते भी थे, उनको न जाने क्यों आज हम नरक-नरकाश्रम = दुःख का-क्लेश का धाम-स्थान देखने-सुनने, समझने और मानने लगे हैं।

वास्तव में सब कुछ वही है, पृथिवी, आकाश, अग्नि, वायु, जल आदि सब वही हैं, उनमें उत्पन्न होने वाले और खाने-पीन, रहने-सहने वाले सब प्राणी भी वही हैं, पर केवल यह मानव बिगड़ गया है, इसकी वृत्तियाँ बिगड़ गई हैं, इसके विचार विकृत हो गए हैं, इसके खान-पान और रहन-सहन दूषित हो गए हैं। कहने का अर्थ यह है कि इस मनुष्य को जो खाना चाहिये था, वह इसने खाना छोड़ दिया और जो इस को खाना नहीं चाहिये था, वह इसने खाना प्रारम्भ कर दिया; जो इसको पीना चाहिये था वह तो इसने पीना छोड़ दिया, और जो इसको नहीं पीना चाहिये था वह इसने पीना शुरू कर दिया; जो इसको देखना और सुनना चाहियें था उसको इसने देखना और सुनना छोड़ दिया, और जो इसको देखना और सुनना नहीं चाहिये था, उसको इसने देखना और सुनना प्रारम्भ कर दिया। इसी तरह जहाँ इसको जाना चाहिये था वहाँ इसने जाना छोड़ दिया, पर जहाँ इसको बिलकुल जाना ही नहीं चाहिये था, वहाँ इसने जाना

आरम्भ कर दिया। इस प्रकार जो-जो कुछ इसे करना चाहिये था वह-वह सब कुछ इसने करना छोड़ दिया, और जो-जो कुछ इसको नहीं करना चाहिये था, वह-वह सब कुछ इसने करना प्रारम्भ कर दिया। घर-गृहस्थ में रहते हुए इसको सदा "ब्रह्मयज्ञ"-ब्रह्मचिन्तन करना चाहिये था, पर वह तो इसने कभी किया ही नहीं। अब जिस परमेश्वर ने इसको यह सुन्दर शरीर दिया, माता-पिता के रूप में इसको ये दिव्य पालक-पोषक दिये, नाना प्रकार के ये उत्तमोत्तम खाद्य-पेय-चूष्य-लेह्य मधुर प्रिय और स्वादिष्ट पदार्थ दिये; पहनने-ओढ़ने के सर्दी-गर्मी और वर्षा से बचने के लिए सूती-रेशमी और ऊनी आदि तरह-तरह के वस्त्र दिये; जीने के लिये और सुखपूर्वक रहने के लिए यह आकाश, यह प्रकाश, यह जल-पानी, यह पवन-वायु और यह धरती आदि सब कुछ प्रदान किया, यह मनुष्य उसी प्राणप्रिय प्रभु से ही विमुख हो रहा है, यह उसी के प्रति कृतज्ञ होकर उसको ही नहीं भजता-नहीं स्मरण करता, अर्थात् इसने प्रभु से जन्म पाकर जब इन सब को देखा तो यह ब्रह्म-परमेश्वर को ही भूल गया। माँ-बाप ने पाल-पोस कर, पढ़ा-लिखा कर जब इसका विवाह कर दिया, तो पत्नी का मुख देख कर यह माँ-बाप को भूल गया। वेद में एक गृहस्थ कहता है कि - "तत्र स्वर्गे पश्येम पितरौ च पुत्रान्"-मैं अपने उस गृहस्थाश्रमरूप स्वर्गाश्रिम में जहाँ पितरौ = माता-पिताओं को देखूँ, वहाँ आने वाले पुत्रों को भी देखूँ। पर आज यह पुत्रों को तो अपना रहा है और पितरों से मुख मोड़ कर उन्हें गवाँ रहा है। आने वाली पीढ़ी पर यह धन लुटा रहा

है, पर जाने वाली पीढ़ी को अब इसे खिलाना-पिलाना और पहनाना-ओढ़ाना आदि भारी पड़ रहा है। अतः अब यह इनको घर से बाहर करने की नित्य नई योजनाएँ बना रहा है। और पत्नी से इस विषय में नित्य विचार-विमर्श कर रहा है। और अगर कहीं इसको माँ-बाप के पास से कुछ प्राप्त होने को दिखाई पड़ता है तो कुछ सेवा-शुश्रूषा भी करता है। पर अगर इस विषय में उसकी आशा कहीं धूमिल पड़ती है तो फ़िर बड़े वेग से यह उन्हें घर से बाहर करने में भी नहीं चूकता। इस प्रकार खाने-पीने, रहने-सहने, सोने-जागने, बैठने-उठने, मान-सम्मान,छोटे-बड़े की मर्यादा, सन्ध्या-हवन, साधना, संयम और सत्संग-स्वाध्याय आदि की सभी मर्यादाओं के छिन्न-भिन्न हो जाने से और घर-परिवार में सच्चे-सुच्चे, साधु-सन्त-विद्वानों के न आने और उपदेश-सदुपदेश न देने से घर-परिवार सब बिखर रहे हैं-टूट रहे हैं। अतः घर-परिवारों में सब प्रकार के सुखों के साधन होने पर भी ये सब दुःखी हैं। दूध घर में पर्याप्त होने पर भी ये चाय पे चाय पिये जा रहे हैं, जौ जैसे सात्विक अन्न को तो ये खाते नहीं, जौ के बने हुए सत्तु को तो ये खाते नहीं, पर इस सात्विक अन्न को सड़ा-सड़ा कर इसकी शराब बना-बना कर इसको पीने में ये ज़रा भी शर्म नहीं करते। ये गन्ने नहीं चूसते, गुड़, शक्कर, चीनी, बताशे आदि नहीं खाते, पर गन्ने के बने हुए शीरे को सड़ा-सड़ा कर उसकी शराब बनाकर ये बड़े शौक से पीने में अपना गौरव समझते हैं। देवयज्ञ-हवन करने की बात करो तो ये पूछेंगे- ये बहस करेंगे

कि-"इससे क्या लाभ है ?" पर बीड़ी-सिग्रेट के बण्डल के बण्डल और पैकेट के पैकेट पीते हुए अनेकों रुपये खर्च-व्यय करके भी ये कभी नहीं सोचेंगे-कभी नहीं पूछेंगे कि-"इस बीड़ी-सिग्रेट से क्या लाभ है ?" रात-दिन गन्दी-गन्दी पिक्चरें देखेंगे, पर सत्संग में जाने को ये सब सौ ब्रहाने करेंगे और कहेंगे कि-समय नहीं है। नावल पढ़ने में घण्टों ही नहीं रातों-रातों ये जागते रहेंगे, पर स्वाध्याय करने में, महापुरुषों के जीवन-चरित्र वा उत्तम साहित्य के अध्ययन-पढ़ने में ये अलकसायेंगे। कभी ९ ही बजे ये सो रहे हैं तो कभी ११, १२, १ और २ भी सोने को इनके बज जाते हैं। कभी ४ ही बजे ये उठ रहे हैं तो कभी उठने में इनको ६-७-८-९ और १० भी बज जाते हैं। आज इन्हें अपना पता है, अपनी भावनाओं का पता है और ये सोचते हैं कि - "हमारी भावनाओं का, हमारी इच्छाओं का घर में सबको ध्यान होना चाहिये, और सबको उनके पूर्ण करने का प्रयास करना चाहिये। पर उनको स्वयं यह ध्यान नहीं है कि उनके माता-पिता, दादी-दादा, नानी-नाना, दोस्त-मित्र, बहिन-भाईयों की भी कुछ भावनायें हो सकती हैं-उनकी भी कुछ इच्छायें हो सकती हैं जिनका कि उन्हें अपने को भुला कर भी ध्यान रखना चाहिये, और उन्हें पूर्ण करने का उन्हें प्रयास करना चाहिये। ऐसे ही अनेकों ऐसे कारण हैं जिन की वजह से यह स्वर्गाश्रम-यह स्वर्गलोक-यह सुख का धाम-यह स्वर्गाश्रमरूप गृहस्थाश्रम आज नरक-नरकाश्रम-दुख-कष्ट और कलह-क्लेश का धाम बन कर रह गया है। किसी प्रकार से ऐसा यह नरक-ऐसा यह नरकाश्रम-ऐसा

यह दुःख का धाम, स्वर्गलोक में-सुख के धाम के रूप में बदल सके और घर के सभी सदस्य उसका वास्तविक आनन्द अनुभव कर सकें, इसी विचार से यह पुस्तक लिखी गई है। इसमें वेद के ही कुछ ऐसे मन्त्रों की व्याख्या की गई है जिनसे गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाले वा गृहस्थाश्रम में विद्यमान महानुभावों को अपने घर-परिवार को स्वर्ग-स्वर्गाश्रम-सुख का धाम बनाने की प्रेरणा प्राप्त हो सके।

इस पुस्तक को पढ़कर पूज्य माता जी एवं उनके सुपुत्र श्री विजय कुमार आदि भाईयों ने देखा तो उन्होंने इस के द्वितीय संस्करण को अपने पूज्य पिता श्री ईश्वर चन्द्र की पुण्य स्मृति में प्रकाशित करने की हार्दिक इच्छा प्रकट की। सो यह सुख का धाम स्वर्गाश्रम-गृहस्थाश्रम नामक पुस्तक का द्वितीय संस्करण उन्हीं की हार्दिक भावनाओं का परिणाम है जो मैं आप के कर कमलों तक पहुँचा सका। इससे स्वाध्याय प्रेमी महानुभावों को कुछ लाभ हुआ तो लेखक और प्रकाशक अपनी लेखनी और अर्थ को सार्थक समझेंगे।

विनीत-रामप्रसाद वेदालंकार

उपकुलपति

गु.कु.का.वि.वि.

हरिद्वार

"सुख का धाम"

स्वर्ग-स्वर्गाश्रम-गृहस्थाश्रम

यत्र सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः।
अंश्लोणा अङ्गैरह्रुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान्
॥ अथर्व० ६.१२०.३॥

अन्वयः- यत्र सुहार्दः, सुकृतः, स्वायाः तन्वः रोगं विहाय, अङ्गैः अश्लोणाः अह्रुताः मदन्ति, तत्र स्वर्गे पितरौ च पुत्रान् पश्येम।

अन्वयार्थः- (यत्र सुहार्दः, सुकृतः, स्वायाः तन्वः रोगं विहाय, अङ्गैः अश्लोणाः अह्रुताः मदन्ति) जहाँ सुन्दर हृदयों वाले, सुन्दर कर्मों वाले, अपने तन अर्थात् शरीर के रोगों से रहित हुए-हुए, अङ्गों से अभंग अर्थात् अङ्गों से अविकृत एवं अङ्गों से अकुटिल जन आनन्द पूर्वक रहते हैं, (तत्र स्वर्गे पितरौ च पुत्रान् पश्येम) उस स्वर्ग लोक में हम पितरों और पुत्रों को देखें।

(यत्र सुहार्दः) जिस घर-परिवार में सुन्दर हृदयों वाले-सुन्दर पवित्र भावनाओं वाले व्यक्ति रहते हैं, (सुकृतः) जहाँ सुन्दर-पवित्र उत्तम कर्मों को करने वाले मनुष्य रहते हैं, (स्वायाः तन्वः रोगं विहाय) जहाँ मनुष्य अपने स्थूल-सूक्ष्म तनों अर्थात् शरीरों के ज्वर, सिर दर्द आदि शारीरिक और ईर्ष्या-द्वेष-घृणा आदि मानसिक रोगों से मुक्त होने के लिए औषधोपचार तथा जप-तप आदि का सेवन करते हैं, (अङ्गैःअश्लोणाः अह्रुताः

मदन्ति) जहाँ रहने वालों के अङ्ग-भङ्ग नहीं होते हैं, अर्थात् जहाँ लूले-लङ्गड़े नहीं होते हैं, जहाँ अङ्गों से अहुत अर्थात् अकुटिल अर्थात् अविकृत अङ्गों वाले व्यक्ति रहते हैं, अर्थात् जहाँ के लोगों के अङ्ग-प्रत्यङ्ग विकृत-वक्र अर्थात् टेड़े-मेढ़े नहीं होते हैं, वही स्वर्ग है। ऐसे स्वर्ग में हम गृहस्थ दम्पती पितरों और पुत्रों को देखें, अर्थात् वहाँ जहाँ हम जाने वाली पीढ़ी को देखें वहाँ हम आने वाली पीढ़ी को भी देखें। तात्पर्य यह है कि ऐसे घर-परिवार में हम रहें जहाँ जाने वाली पीढ़ी को प्रणाम कर उनसे आशीर्वाद लेवें, वहाँ हम आने वाली पीढ़ी से प्रणाम पाकर उसको आशीर्वाद भी दें।

सामान्यतः स्वर्ग उस स्थान को कहते हैं, जहाँ सुख हो, शान्ति हो, आनन्द हो। स्वर्ग वह कहाता है जहाँ स्वतन्त्रता हो। जहाँ शारीरिक सुख और मानसिक सुख के साधन हों, जहाँ मानसिक शान्ति और उस शान्ति के उपाय ज्ञान-प्रकाश-स्वाध्याय-सत्संग आदि हों, और जहाँ स्वतन्त्रता हो, आत्मिक उत्थान की सब सुविधायें हों। इसके विपरीत नरक उस को कहते हैं, जहाँ दुःख हो, अशान्ति हो, आनन्द का अभाव हो। नरक वह कहाता है, जहाँ शारीरिक दुःख औरर दुःख के साधन हों, जहाँ सदा मानसिक अशान्ति बनी रहती हो, और सदा मन को व्यथित करने वाले कलह-क्लेश बने रहते हों, जहाँ आत्मा के उत्थान का न ही वातावरण हो और न ही उसके साधन हों।

वेद के उपर्युक्त मन्त्र में बतलाया गया है कि स्वर्ग वहाँ

है जहाँ सुन्दर हृदय वाले-सुन्दर भावनाओं वाले लोग रहते हैं, जहाँ उत्तम कर्मों को करने वाले मनुष्य रहते हैं, जहाँ स्थूल-सूक्ष्म शरीरों के रोगों से मुक्त हुए-हुए लोग रहते हैं, जहाँ लोगों के अङ्ग-प्रत्यङ्ग ठीक होते हैं, अर्थात् जहाँ कोई लूले-लङ्गड़े नहीं होते, और जहाँ रहने वालों के अंग-प्रत्यंग कुटिल=टेड़े-मेढ़े नहीं होते, तथा जहाँ एक-दूसरे के प्रति सबके हृदय भी अकुटिल अर्थात् ऋजु सरल-निश्छल बने रहते हों, तथा जहाँ माता-पिता को सिर-आँखों पर बिठाने का प्रयास कर, उनकी सुख-सुविधाओं का ध्यान कर, उनको प्रतिदिन प्रणाम कर उनके आशीर्वाद से अपने को निहाल किया जाता हो। और आने वाली पीढ़ी में वर्तमान पुत्र-पुत्रियों को लाड-प्यार से पाल-पोस कर, पढ़ा-लिखा कर कृतार्थ करने का प्रयास किया जाता हो। ऐसे व्यक्ति इस स्वर्ग में रहते हुए सदा हर्षित-सदा प्रसन्न रहते हैं।

वेद कहता है, सुख का धाम वह है-स्वर्गाश्रम-गृहस्थाश्रम वह है, जहाँ 'सुहार्दः' (सु-शोभनं हृद् येषां ते सुहार्दः) रहते हैं-जहाँ के लोगों का हृदय परस्पर एक-दूसरे के प्रति सदा सु-अच्छा-सुन्दर-उत्तम-शुभ-भला बना रहता हो। हृदयों का सौन्दर्य भावनाओं के सौन्दर्य पर निर्भर करता है। तात्पर्य यह है कि जिनका हृदय-जिनका दिल परस्पर एक-दूसरे के प्रति सदा सुन्दर-शुभ-उत्तम-दिव्य भावनाओं से ओत-प्रोत रहता हो-जिनके हृदयों में परस्पर एक-दूसरे के प्रति अच्छी-सुन्दर-उत्तम-शुभ-भली भावनाएँ ठाठें मारती रहती हों। सु-सुन्दर-शुभ-उत्तम-भली भावनाएँ कौन-सी होती हैं जिनके द्वारा घर-परिवार के लोग परस्पर

एक-दूसरे को सुख-शान्ति और आनन्द पहुँचाना चाहते हैं। अतः सुहार्द मनुष्य वह सुनना चाहते हैं, वह देखना चाहते हैं, वह स्पर्श करना चाहते हैं, वह सोचना और विचारना चाहते हैं, वह बोलना और करना चाहते हैं जिससे दूसरों को सुख मिले, शान्ति मिले, प्रसन्नता मिले। जैसे राम को एक दिन माता कौशल्या ने आसन पर बिठला कर जब मि० मिष्टान्न परोसा, तो उसने बड़े प्यार से खाना प्रारम्भ किया। अभी ज़रा सा खाया ही था कि झट रख दिया। इस पर माता कौशल्या जी बोलीं कि "राम! क्या मिठाई अच्छी नहीं बनी जो एक ग्रास खाते ही शेष छोड़ दी?" राम बोले-"माँ,!मिठाई बहुत स्वादिष्ट बनी है।" माँ बोली- "राम! यदि यह मिठाई स्वादिष्ट बनी हुई होती तो तुम यह सब खा न लेते!" राम बोले-"माँ,!मिठाई बड़ी ही स्वादिष्ट बनी, इतनी स्वादिष्ट कि एक ग्रास खाते ही लक्ष्मण की याद आ गई। सो यह खाई नहीं गई। अब तो माँ! जब लक्ष्मण आ जायेगा तो तब दोनों मिलकर इसे खायेंगे।" सो ऐसी दिव्य भावनाएँ जहाँ हृदयों में प्रवाहित होती हैं, वह स्वर्ग कहाता है। सो जिस घर में इस प्रकार एक-दूसरे को स्मरण कर, एक दूसरे को देखकर, एक-दूसरे को सुनकर, एक-दूसरे से बोलकर, एक-दूसरे को खिलाकर, एक-दूसरे के समीप बैठकर, एक-दूसरे का सहयोग करके मनुष्य फूले न समाते हों, वह घर स्वर्ग कहलाता है। परन्तु इसके विपरीत जिस घर-परिवार में सब परस्पर एक-दूसरे के प्रति 'दुर्हृदः' बुरे हृदय वाले बने रहते हों, अर्थात् जिनके हृदयों में परस्पर एक-दूसरे के प्रति सदा दुर्भावनाएँ-दुष्ट

भावनायें ही बनी रहती हों, जहाँ परस्पर एक-दूसरे को दुःख-कष्ट-क्लेश, हानि-नुकसान पहुँचाने के लिए ही दिलो-दिमाग में - हृदय और मस्तिष्क में दुर्भानाएँ एवं दुर्विचार प्रवाहित होते रहते हों, तो फ़िर वह स्वर्ग नहीं बल्कि नरक बन जायेगा।

वेद कहता है, हे मनुष्यो! स्वर्ग और नरक केवल सुहृद् और दुर्हृद् से बनते हैं। आप घर-परिवार के सब लोग परस्पर एक-दूसरे के प्रति यदि सुन्दर-शुभ-उत्तम-दिव्य भावनाओं से भर जायेंगे तो वह स्वर्ग बन जायेगा-सुख का धाम बन जायेगा, सुख-शान्ति और आनन्द का केन्द्र स्वर्गाश्रम-पावन गृहस्थाश्रम बन जायेगा, पर अगर आप सब लोग परस्पर एक-दूसरे के प्रति दुर्हृद - बुरे हृदय वाले बनकर दुर्भावनाओं से भर जायेंगे, तो फिर वही लोक दुर्लोक - दुःखमय लोक - दुःख का धाम-नरक-नरकाश्रम ही बन जायेगा। यदि कोई पूछे कि ये घर-परिवार में रहने वाले व्यक्ति सुहार्द-सुहृदय वाले-सुन्दर सुखद उत्तम भावनाओं वाले कब और कैसे बनते हैं ? तो इसका उत्तर यह है कि घर में जब पञ्चमहायज्ञ चलते हैं, अर्थात् परिवार में जब ब्रह्मयज्ञ-परब्रह्म परमेश्वर की उपासना होती है, देवयज्ञ-अग्निहोत्र होता है-अग्नि में घृत सामग्री आदि उत्तम द्रव्यों की आहुतियाँ दी जाती हैं; अतिथियज्ञ में जब साधु-संन्यासी-ज्ञानी-ध्यानी-तपस्वियों को बुलाकर घर-परिवार में जब उनके उपदेश-सदुपदेश कराए जाते हैं, उनसे जब वेद आदि सत्य शास्त्रों के अनुकूल उत्तम वचन-प्रवचन सुने जाते हैं, वा उनकी प्रेरणा से जब उन वेद आदि सत्य शास्त्रों का स्वाध्याय किया

जाता है, महापुरुषों का जीवन-चरित्र आदि पढ़ा जाता है, दीन - अनाथ एवं अभावग्रस्त प्राणिंयों के दुःख-दर्द, कष्ट-क्लेशादि को जहाँ दूर करने का प्रयास किया जाता है, तो वहाँ सहज ही तब सबके हृदय सुहृदय बन जाते हैं, उनकी भावनाएँ फ़िर सुन्दर-शुभ-उत्तम श्रेष्ठ भावनाएँ बन जाती हैं, और घर-परिवार तब स्वर्ग-सुख के धाम-स्वर्गलोक-स्वर्गाश्रिम बन जाते हैं। पर जहाँ यह सब कुछ नहीं होता, अर्थात् जहाँ कृतज्ञतापूर्वक उस परब्रह्म परमेश्वर को ध्याया नहीं जाता-गाया नहीं जाता; जहाँ यज्ञ आदि उत्तम कार्यों में अपनी आहुतियाँ न देकर, अपने ही उदर में केवल खाद्य एवं पेय पदार्थों की आहुतियाँ दी जाती हैं; जहाँ माता-पिता के प्रति कृतज्ञ होकर उनका मान - सम्मान और उनका सेवा-सत्कार नहीं किया जाता; साधु-संन्यासी, ज्ञानी-ध्यानी विद्वान् को जहाँ न ही सुना जाता है, न ही उसका अतिथ्य किया जाता है, न ही जहाँ स्वाध्याय - सत्संग आदि होता है, तथा न ही जहाँ दीन-अनाथों और अभावग्रस्तों की सहायता के विषय में कुछ सोचा विचारा जाता है, तो ऐसे घर-परिवार के सदस्यों के हृदयों में फ़िर कभी सुन्दर भावनाएँ नहीं उठतीं, और सुन्दर भावनाओं के अभाव में फ़िर वे सुहृदय-सुन्दर हृदयों के अभाव में फ़िर वह घर स्वर्ग-सुख का धाम नहीं बन पाता। उल्टा साधना, संयम, स्वाध्याय, सत्संग और सेवा के आभाव में वे आलसी असंयमी असत्संगी अर्थात् कुसंगी, अस्वाध्यायीं वा गन्दे नावल आदि पढ़-पढ़ कर स्वार्थ के ऐसे कीचड़ में धंस जाते हैं कि फ़िर वहाँ से उनका जीवन नरकमय सा ही बन

जाता है। एक घर में तीन-चार भाई थे। बड़ा भाई व्यापार करता था। दो-एक भाई अच्छी-अच्छी उपाधियाँ-डिग्रियाँ पाकर अच्छी-अच्छी सर्विस में जा लगे। अन्त में उनका एक छोटा भाई थोड़ा-बहुत कुछ पढ़ लिख करके अपने बड़े भाई के साथ दुकान पर आ बैठा। बड़े भाई ने उसका विवाह कर दिया। व्यापार कुछ ढीला पड़ गया, या यों समझो कि खर्चा बढ़ जाने से उस दुकान की आय से दोनों घरों का गुज़ारा होना मुश्किल हो गया!बड़े भाई ने एक दिन दुकान पर बैठे-बैठे अपने छोटे भाई से कहा कि-''भाई! तुम्हें मालूम है कि इस दुकान पर हम दोनों का गुज़ारा नहीं हो सकता, तो फ़िर तुम कोई और काम क्यों नहीं ढूण्ढ लेते।'' इस पर छोटे भाई ने अपने बड़े भाई से कहा-''भाई साहब! अमुक दुकान मिल रही है, ले लेते हैं।'' बड़ा भाई बोला-''तुम्हें इस शहर से कहीं जाकर बाहर काम ढूँढ़ना चाहिए, क्योंकि इस शहर में तो काम है ही नहीं।'' छोटा भाई दुविधा में पड़ गया और सोचने लगा कि-'' क्या करूँ, क्या नहीं करूँ, कुछ समझ नहीं आता। क्योंकि बाहर जाना भी कोई खेल नहीं है। यहीं कुछ काम हो जाए तो ठीक है।'' और वह इसके लिये अपने बड़े भाई से आग्रह भी करता है। परन्तु बड़ा भाई सोचता है कि-''यदि यह मेरा छोटा भाई यहाँ रहेगा तो या तो मुझे इसको दुकान देनी होगी या फ़िर मकान। पर अगर यह इस नगर से बाहर कहीं व्यापार करने चला जाए तो ऐसी स्थिति में फिर यह दुकान और मकान दोनों ही मेरे पास रह जायेंगे।'' अब जहाँ यह स्वार्थ आया,यह लोभ आया, वहाँ

उसका हृदय विकृत हो गया, उसकी भावनाएँ विकृत हो गयीं, और वह नित्यप्रति ऐसे तौर-तरीके और व्यवहार करने लगा कि जिससे वह छोटा भाई उस नगर से बाहर कहीं बसने को चला जाए। आखिर वह हृदय से न चाहता हुआ भी वहाँ से बाहर कहीं बस गया। पर आज वर्षों बाद भी उसके हृदय में यह पीड़ा है कि उसे उसके भाई के कारण वह शहर छोड़ना पड़ा। तो इस प्रकार की स्वार्थमयी दुर्भावना जब घर-परिवार के किसी एक भी मनुष्य के हृदय में पहले जन्म लेतीं है तो फ़िर उस एक व्यक्ति की यह दुर्भावना उसके अपने परिवार अर्थात् पत्नी-पुत्र-पुत्रियों में भी घर कर जाती है। यों समझो कि जैसे एक परिवार का दूसरे परिवार को घर से किसी भी तरह से निकाल बाहर करने का वातावरण तैय्यार हो जाता है। इधर एक भाई इसी शहर में इसी घर में रहकर कुछ और व्यापार करके ही अपनी रोजी-रोटी कमाने का सोच रहा है, पर उधर उसको केवल दुकान से ही नहीं वरन् घर से भी बाहर कर किसी दूसरे शहर में व्यापार आदि करने को प्रेरित किया जा रहा है। सो इस प्रकार के वातावरण में कुछ न कुछ कहा-सुनी भी होती रहती है और घर की सुख-शान्ति भी जाती रहती है। यों घर नरक-दुःख का धाम सा ही बन जाता है। हाँ जब वह अन्यत्र चला जांता है तो लोक लाज के लिये उसके अभाव का अनुभव भी दर्शाया जाता है। पर भीतर ही भीतर सुख भी अनुभव किया जाता है। पर यदि इसके विपरीत यदि ऐसी ही परिस्थिति में कोई छोटा भाई कहता है कि-"भाई साहब! यदि इस दुकान पर हमारा इतना

कार्य नहीं है कि हम दोनों का गुज़ारा हो सके, तो फ़िर मैं कहीं अन्यत्र दूसरे शहर में जाकर व्यापार कर लेता हूँ एवं वहीं ही बस लेता हूँ।'' ऐसी स्थिति में यदि बड़ा भाई यह कहे कि-''प्यारे भैय्या, कार्य की कमी के कारण ही तो हम दोनों पृथक् हो रहे हैं, वैसे थोड़ी! अतः तू यहीं पर इसी नगर में ही रहकर कुछ और कार्य व्यापार कर ले। यदि दिक्कत भी होगी तो मेरी आँखों के सामने तो रहोगे। फ़िर रात को घर में इकट्ठे तो होंगे, और एक-दूसरे के साथ मिल-बैठकर जीवन के दिन तो सुख से व्यतीत करेंगे। पर अगर तू कहीं दूर दूसरे नगर में जा बसा तो मैं तुम्हें देखने को ही तरस जाऊँगा।'' यह सब सुहार्दों की बातें हैं-प्यार के सुन्दर हृदयों में उठने वाली भावनाएँ हैं, जो उन्हें एक-दूसरे से दूर नहीं होने देतीं-जो उन्हें एक-दूसरे से पृथक् नहीं होने देतीं। इन्हीं सुन्दर भावनाओं के परिणामस्वरूप ही घर स्वर्ग-सुख का धाम-स्वर्गाश्रम बनता है, जबकि पहली दुर्भावनाओं के परिणामस्वरूप घर नरक-दुःख का धाम बना रहता है।

मुझे स्मरण है कि १९४७ में जब बहुत से लोग भारत आए थे तो उस समय यहाँ आने पर भाई-भाई भी परस्पर बिछड़ गए थे। और वे कहीं के कहीं जा बसे थे। परन्तु मैं ने देखा कि पुनः कई भाईयों के स्नेह-सौहार्दों ने ही उन्हें एक स्थान पर मिला दिया। मंझला भाई एक बड़े जनपद में थोक का व्यापारी बन गया। काम खूब चला। उसने अपने बड़े-छोटे भाईयों को बुलाया। पर वे वहीं नहीं आए। वे एक छोटे से सीधे-सादे कस्बे में रह रहे थे। और वे वहीं रहकर ही प्रसन्न थे। वे दोनों

जब उसके पास नहीं आए, तो यह ही अपना सब चला-चलाय व्यापार छोड़कर अपने बड़े-छोटे भाईयों के पास चला आया और यहीं ही उसने एक बड़ी सी दुकान ले ली। उसने बड़े भा को उस पर श्रद्धा से ससम्मान बिठाया और छोटे को लाड-प्या से अपने स्थान पर बिठाया। इस प्रकार उसने पाकिस्तान की तरह दोनों के साथ लम्बे काल तक सुख-पूर्वक बड़ा ही सुन्दर जीवन व्यतीत किया।

सुहार्दों-सुन्दर हृदय वालों में परस्पर एक-दूसरे के प्रति सुन्दर स्नेह और सम्मान भरी भावनाएँ उठती रहती हैं, पर दुर्हार्दे अर्थात् दुर्हृदय - बुरे हृदय वालों में परस्पर एक-दूसरे के प्रति दुर्भावनाएं-कुत्सित भावनाएँ ही सदा प्रवाहित होती रहती हैं।

माँ एक दिन अपने एक बेटे को बड़े स्वादिष्ट सूखे शहतूत एवं सूखी खुबानी खाने को देती है। बेटा बड़े प्यार से उन्हें खाना प्रारम्भ करता है, पर उसने एकाध दाना खाया ही होग कि उसने वह सब द्रव्य पुनः अपनी माँ को वापिस दे दिया माँ पूछती है-"बेटा, क्या तुमको ये शहतूत और खुबानी अच्छी-नहीं लगी ?'' बेटा बोला - ''माँ, ये सूखे शहतूत औ खुबानी अच्छी स्वादिष्ट तो बहुत लगीं, पर मुझे अपनी दीदी याद आ गई। अतः अब शेष उसके आने पर मैं उसके साथ खाऊँगा।'' ये सब घर-परिवार में रहने वाहे सुहार्दों की-सुन्दर हृदय वालों की बातें हैं-सुन्दर हृदयों में भाई बहिनों की सुन्दर-सुन्दर भावनाओं के प्रवाह की बातें हैं-स्वर्ग की-स्वर्गलोक की-सुख के धाम पावन गृहस्थाश्रम की बातें हैं। पर अगर आज

हम सरीखे भाई-बहिनें हों तो जहाँ हमें सूखे शहतूत और खुबानियाँ स्वादिष्ट लगेंगी, तो वहाँ एक दम हमारे हृदयों में दुर्भावनाएँ प्रवाहित होनी आरम्भ हो जायेंगी, और हम तब उन्हें और अधिक जल्दी-जल्दी खाना प्रारम्भ कर देंगे, यह सोच कर, कि कहीं और भाई-वहिन आगए, तो वे इनमें से अपना भाग बटवायेंगे। और यदि इनमें से उन्होंने कुछ ले लिया, तो फ़िर अपने खाने को तो कुछ विशेष रह ही नहीं पायेगा। अतः जितना जल्दी इन्हें खाकर समाप्त कर दिया जाए उतना ही अच्छा है। सो हम जल्दी से जल्दी उन्हें खा कर समाप्त कर देते हैं, ताकि उनको पता ही न लगे। पर अगर उस दूसरे भाई-बहिन के आते ही उसे यह सब ज्ञात हो जाता है, तो फ़िर वह कल्पता है, और उन्हें कोसता भी है। यह सब दुर्हार्दों की-दुर्हृदय वालों की-दुर्भावनाओं=स्वार्थ-भरी भावनाओं वालों की बातें हैं, नरक की-दुःखों के धाम की - नरकाश्रम की बातें हैं। सो हम सबका ऐसा जीवन व्यतीत हो कि हमारे घर-परिवार स्वर्ग बनें-सुख के धाम बनें-स्वर्गाश्रिम रूप गृहस्थाश्रम बनें। तभी हम सदा खुश रह सकेंगे। पर दुर्हार्द-दुर्हृदय वाले-दुर्भावनाओं वाले लोग जहाँ होंगे, यह तो फ़िर नरक-दुःख का धाम ही बनेगा।

वेद आगे कहता है कि 'सुकृतो मदन्ति'- जहाँ (सुकृत् सुकृतौ सुकृतः) सुकर्मा होते हैं-सुन्दर कर्मों को करने वाले व्यक्ति रहते हैं, वह स्वर्ग होता है। और उस स्वर्ग-सुख के धाम में फ़िर वे बड़े ही प्रसन्न रहते हैं। अब सुकृतः-सुकर्मों-सुन्दर-सुखद कर्मों को भी करने वाले वही लोग होते हैं जिनके

हृदय सु-अच्छे-उत्तम होते हैं-जिनके हृदयों में सुन्दर-सुन्दर सुख भावनाएँ प्रवाहित होती हैं। अब जिनका यह हृदय सुन्द होगा-उत्तम होगा और पवित्र होगा, उनकी दृष्टि भी तब सुन्दर-य हृदय भी तब उत्तम और पवित्र होगा। उस सुन्दर-उत्तम औ पवित्र दृष्टि का परिणाम भी फ़िर बड़ा ही सुन्दर और सुख होगा। पर इसके विपरीत यदि उनका हृदय दुः-बुरा होगा, त फ़िर उनकी दृष्टि भी दुर्दृष्टि बन जायेगी, और तब उस दुर्दृष्टि के परिणाम भी फ़िर बड़े ही दुःखद होंगे। मनुष्यों के हृदय यदि सुहृदय हो जाएँ तो फ़िर व्यक्तियों के श्रवण सुश्रवणों में, दर्शन सुदर्शनों में, जिघ्रण सुजिघ्रणों में, स्पर्श सुस्पर्शों में, चिन्तन सुचिन्तनों में, विचार सुविचारों में, वचन सुवचनों में, भोजन सुभोजनों में, पेय सुपेयों में, व्यवहार सुव्यवहारों में, कर्म सुकर्मों में बदल जायेंगे। और तब उसके परिणाम भी फिर बड़े ही सुन्दर और बड़े ही सुखद होंगे। पर यदि उनका हृदय दुर्हृदय में बदल जाए तो फ़िर उसमें उठने वाली भावनाएँ भी दुर्भावनाओं में बदल जायेंगी, और उनके कारण तब उनकी दृष्टियाँ भी दुर्दृष्टियों में, श्रवण भी दुःश्रवणों में, जिघ्रणं भी दुर्जिघ्रणों में, स्पर्श भी दुःस्पर्शों में, चिन्तन भी दुश्चिन्तनों में, विचार भीं दुर्विचारों में, वचन भी दुर्वचनों में, भोजन भी दुर्भाजनों में, पेय भी दुष्पेयों में, व्यवहार भी दुर्व्यवहारों में, कर्म भी दुष्कर्मों में बदल जायेंगे। और उनके परिणाम भी तब बड़े ही बुरे और बड़े ही दुःखद होंगे। घर बनता भी स्वर्ग तभी है जब घर-परिवार में रहने वालों के हृदय सुहृदयों में, भावनाएँ सुभावनाओं में, व्यवहार सुव्यवहारों

में, कर्म सुकर्मों में बदलें। अन्यथा दुर्हृदय और दुर्भावनाओं के परिणामस्वरूप तो घर-परिवार में दुर्व्यवहारों और दुष्कर्मों के होने से परिवार नरक का धाम ही बनता है। और फ़िर ऐसा घर-परिवार कभी सुख शान्ति और आनन्द से रह ही नहीं सकता।

बस की यात्रा में एक व्यक्ति ने एक जगह चार सन्तरे लिए। उसने एक सन्तरा अपने पुत्र को, दूसरा पुत्री को, तीसरा पत्नी को दिया और चौथा स्वयं लेकर सेवन करने लगा। सभी ने अपना-अपना सन्तरा खा लिया-चूस लिया, पर खिड़की के समीप बैठी हुई दूसरी कक्षा में पढ़ने वाली उस छोटी सी बेटी ने अपनी माँ से कहा-''माँ जी! बस की यात्रा में आपका जी मचलाता है-दिल खराब होता है। रास्ते में पता नहीं आगे फ़िर सन्तरा आदि मिले या न मिले, तो मैंने अपना सन्तरा रख लिया है। आपका जब भी जी खराब होने लगे तो वह सन्तरा मुझसे ले लेना।'' छोटी सी उस बच्ची के उन शब्दों को सुनकर उसकी माँ बड़ी प्रभावित हुई। उसने उसको बहुत प्यार किया। उसका पिता भी मन ही मन उसको सराहता रहा। रास्ते में उसकी माँ को सन्तरे की आवश्यकता तो बिल्कुल नहीं पड़ी। पर बेटी के उस सुन्दर हार्दिक दिव्य व्यवहार को आज भी जब वह स्मरण करती है तो वह सहज ही अपनी उस लाडली बेटी के प्रति आवर्जित हुई-हुई उसको हृदय से साधुवाद और आशीर्वाद देती हुई थकती नहीं। घर-परिवार में होने वाले इन सुकर्मों के परिणामस्वरूप न ही केवल घर के बालक ही सदा प्रसन्न रहते हैं वरन् उन सबके उन उत्तम प्रिय व्यवहारों से तब घर के वृद्ध

महानुभाव भी फ़ूले नहीं समाते। माता-पिता के स्नेह-लाड-प्यार को एवं उनके उपकारों को अच्छे बच्चे जीवन की अन्तिम घड़ियों तक स्मरण कर-कर के उनके प्रति कृतज्ञतापूर्वक सदा मन ही मन नतमस्तक होते रहते हैं। श्री रामचन्द्र जी, सीता जी के साथ मिल बैठकर बात-चीत करते हुए समय-समय पर अपने पूज्य माता - पिताओं को स्मरण करते हुए कहते हैं-''देवि सीते!ते हि नो दिवसा गताः''-''हे सीते! हमारे जीवन के अब वे सुहावने सुखद दिवस व्यतीत हो गए जबकि हम अपने पूज्य माता-पिताओं की पावन छत्र-छाया में निश्चिन्त सुखमय जीवन व्यतीत करते थे। आज तो हम नानाविध उत्तरदायित्वों से घिरे रहते हैं। आज वह सुखमय निश्चिन्त जीवन कहाँ रहा!''

आज भी मैं एक सज्जन को जानता हूँ जो कहता है कि-''हम सब जब बहुत छोटे-छोटे थे, तब हमारी पूज्या-माता जी स्वर्ग सिधार गयीं। हम सात भाई-बहन थे। पिताजी ने जैसे-तैसे कुछ गाड़ी खींची। पर जब पर्याप्त कठिनाई हो गई, तब उन्होंने अपने बड़े पुत्र का विवाह कर दिया। बहु के रूप में जब हमारी भाभी का घर में प्रवेश हुआ तो हमारे पूज्य पिता जी बोले-''देवी! मैं अपने बड़े पुत्र के लीएं तो आप को बहु के रूप में इस घर में लाया हूँ पर शेष इन सब बच्चों के लिए मैं आप को 'माँ' के रूप मैं लाया हूँ। मुझे विश्वास है कि तू उन सबको इस घर में माँ के रूप में स्नेह-लाड-प्यार एवं संरक्षण देगी...।'' उस देवी ने भी सचमुच उस घर में अपने को ऐसा लगा दिया कि सब खूब प्रसन्न हो गए। पर इस देवी

का स्वास्थ्य बहुत शिथिल पड़ गया। पति से पत्नी की यह दशा देखी नहीं गयी। अतः उसने एक दिन चुप-चाप एक फ़्लेट किराए पर ले लिया और वह घर आकर अपने सब भाई-बहनों को सम्बोधित करके बोला कि-"मैं इस को अपने इस घर में पत्नी बनाकर लाया था, नौकरानी बनाकर नहीं, तुम्हें पता है कि इसकी क्या हालत हो रही है? मैंने तो फ़्लेट ले लिया है। मैं अब इसको और अपने इन बच्चों को ले जा-रहा हूँ। अब तुम जानो और तुम्हारा काम।" पति तो यह सब कुछ कह गया, पर पत्नी ने जब यह सब कुछ सुना, तो वह एक दम बोली-"पति-देव!आप ने फ़्लेट लिया है तो आप जाओ, और रहो उसमें। पर मैं तो जब इस घर में आई थी तो पूज्य पिता जी ने मुझसे एक वाक्य कहा था-"देवि! मैं तुम्हें इन बच्चों के लिए माँ के रूप में लाया हूँ।" सो अब आप ही बताओ पतिदेव! कि कोई माँ भले ही कितनी ही कमजोर क्यों न हो जाए, वह भला अपने बच्चों को ऐसे छोड़ कर जा सकती है ? खासकर उस अवस्था में, जब कि उनके लिए घर में न कोई भोजन बनाने वाला हो और न ही कोई उनके कपड़े-लत्ते धोने वाला हो। सो आपने फ़्लेट ले लिया है, अतः आप जाएँ तो जाएँ, पर मैं तो पूज्य पिता जी के कथन को कभी नहीं टाल सकती।" तो वे सज्जन मुझसे बोले कि-"आचार्य जी! आज उस घर के हम सभी व्यक्ति सभी दृष्टियों से सम्पन्न है, अपने शुभ गुण कर्म स्वभावों से यशस्वी बनकर अपने पूज्य माता-पिता को अमर बनाए हुए हैं। पर आज भी उस पूज्या भाभी जी के

वे दिव्य शब्द हमारे कानों में गूँजते हैं। उन्होंने जो हमें माँ के समान स्नेह-लाड-प्यार दिया और जी-जान से जो हमारा लालन-पालन किया, उसको स्मरण करते ही आज भी हमारा सिर श्रद्धा से उनके चरणों में झुक जाता है। ऐसी पूज्या मातृतुल्या भाभी के लिए हम जो भी कुछ कर दें,. वह हमें उनके पावन त्यागमय व्यक्तित्व के सम्मुख तुच्छ ही प्रतीत होता है।'' सो उसके ऐसे सुकर्मों का ही परिणाम है, कि जिनके कारण वे सब उनको आज देखते हैं तो श्रद्धा से उनके प्रति नतमस्तक होते हुए फूले नहीं समाते। और उनकी भाभी भी जब उन सबको आज हर दृष्टि से सम्पन्न देखती है, तो फ़िर वह ठीक ऐसे ही फूली नहीं समाती जैसे कि एक माँ बच्चों को हर दृष्टि से निहाल देख कर फूली नहीं समाती।

घर-परिवार के सदस्यों में परस्पर सौहार्द हो-उनके हृदयों में परस्पर एक-दूसरे के प्रति सुन्दर-सुन्दर, दिव्य-दिव्य भावनाएँ प्रवाहित होती रहती हों, तो फ़िर उनको परस्पर एक-दूसरे से विचार-विमर्श करना प्रिय लगता है, परस्पर एक-दूसरे को खिलाना-पिलाना, पहनाना-ओढ़ाना, और घुमाना-फ़िराना आदि बहुत अच्छा लगता है। तब उनका जी करता है कि हम अपनी इस पूज्या मातृतुल्य भगिनी को वा इस पूज्य पितृतुल्य भाई जी को वह खिला डालें, वह पिला डालें, जो कि कभी आज तक इन्होंने खाया-पिया ही न हो, जो कि कभी आज तक इन्होंने कभी पहना-ओढ़ा ही न हो, जो कि कभी आज तक इन्होंने देखा-भाला ही न हो। तब उनको परस्पर एक-दूसरे के प्रस्ताव

भी बहुत अच्छे लगते हैं, परस्पर एक-दूसरे के सुझाव भी बहुत प्रिय लगते हैं। एक परिवार में एक भाई माँ के पास आया और बोला-"माँ! आज कितना प्यारा दिन है। नन्हीं-नन्हीं बून्दों के रूप में कितनी प्यारी वर्षा हो रही है । बड़े भैय्या भी छुट्टी पर आए हुए हैं, दीदी की भी आज छुट्टी है, पिता जी की भी आज छुट्टी होने से वे भी आज घर पर विराजमान हैं। क्या ही अच्छा हो माँ, यदि आप गर्म-गर्म पकौड़े बना दें, तो हम सब मिल-बैठ कर प्रेम से खा लें।" माँ बोली-"बेटा! हमारे घर में बेसन भी है; आलु बैंगन और गोभी भी है। मैं अभी तुम सबके लिए पकौड़े बना देती हूँ।"इतने में दूसरा भाई आया और माँ से बोला-"माँ जी! यह आप क्या बना रही हो ?" माँ बोली-"बेटा!तुम्हारे छोटे भैय्या ने पकौड़े याद किये, सो मैं वही बना रही हूँ। तुम सब मिलकर खा लेना।" बेटा बोला-"माँ! भैय्या कितने कमाल का है! हमारे तो मन में ही यह बात आ रही थीं कि आज पकौड़े बनें। उसने आज हम सबके मन की बात कह दी। माँ जी ! पकौड़े अवश्य बनाओ। हम सब मिल-बैठ कर बड़े प्यार से आज पकौड़े खायेंगे।" घर में जब सबके हृदयों में परस्पर प्यार होता है तो फ़िर प्रत्येक को प्रत्येक की प्रत्येक बात अच्छी लगती है, तो फ़िर हर एक को हर एक का हर एक प्रस्ताव प्रिय लगता है, तो फ़िर हर व्यक्ति को हर एक व्यक्ति की आकृति-शक्ल और प्रकृति-स्वभाव भी बहुत अच्छा लगता है, तब फ़िर घर में हर एक का हर कार्य हर एक को अच्छा लगता है। परन्तु यदि उस घर के सदस्यों के हृदयों

में परस्पर एक-दूसरे के लिए सुन्दर-सुन्दर उत्तम पवित्र भावनाएं न हों, तो फ़िर उनमें से किसी एक को न किसी दूसरे की बात अच्छी लगती है, न किसी दूसरे का कोई प्रस्ताव प्रिय लगता है, न किसी दूसरे की आकृति-शक्ल अच्छी लगती है, न किसी दूसरे की प्रकृति - स्वभाव सुहाता है, न किसी दूसरे का व्यवहार अच्छा लगता है, न हि किसी दूसरे का कोई कार्य अच्छा लगता है। तब तो फ़िर वे यदि एक-दूसरे की बात सुनते हैं या एक-दूसरे की आकृति देखते हैं या एक-दूसरे के कार्य-व्यवहार को देखते हैं तो वे खुश नहीं होते-प्रसन्न नहीं होते, वरन् दुःखी होते हैं-जलते-कुढ़ते रहते हैं। तब उनका घर स्वर्ग नहीं, नरक बन जाता है-सुख का धाम नहीं, दुःख का धाम बन जाता है-स्वर्गाश्रम नहीं, नरकाश्रम बन जाता है।

सहारनपुर से एक सज्जन मुझे मिलने आए तो वे बोले कि-"मेरे दोनों बेटों ने चाकू निकाल लिए और एक दूसरे से भिड़ गए। परस्पर लड़ते हुए उनका जो हाल हुआ सो तो हुआ। पर उन्हें जब मैं छुड़ाने लगा, तो मेरे सिर पर भी चाकू लगे। पुलिस आ गई और उसने मुझसे पूछा और कहा कि-मैं रिपोर्ट लिखाऊँ। पर मैं पुलिस से बोला कि-"मैं यदि इस बेटे का दोष बताता हूँ तो यह हवालात में जाता है और अगर उस दूसरे बेटे का दोष बताता हूँ, तो वह हवालात में जाता है। मैं अपने विषय में उन दोनों को दोषी बताता हूँ, तो भी उन दोनों की ही दुर्दशा होती है। इस प्रकार हर परिस्थिति में पिता होने से मेरा ही हृदय तड़फ़ेगा । अतः आप हम सबको अपने ही हाल पर

छोड़ जाओ। मैं ही इन्हें कुछ समझाऊँगा। यदि इनको सद्बुद्धि आ गई और इनके हृदय कुछ बदल गए, तो हमारा घर-स्वर्ग-सुख का धाम बन जायेगा, अन्यथा नरक-दुःख का धाम तो अब यह बना ही हुआ है।

सो इस प्रकार घर-परिवार वालों के दिलो-दिमाग़=हृदय और मस्तिक परस्पर एक-दूसरे के प्रति सु-अच्छे-शुभ-उत्तम-पवित्र बने रहेंगे तो घर स्वर्ग-स्वर्गाश्रम-सुख का धाम बन जायेगा। और सब उसमें प्रसन्न रहेंगे। अगर उनके दिलो-दिमाग़ एक-दूसरे के प्रति दुः-बुरे-कुत्सित बन जायेंगे, तो फ़िर वह नरक-दुःख का धाम ही बनेगा, और फ़िर सब मनुष्य उसमें सदा दुःखी और बैचेनं ही बने रहेंगे।

वेद आगे कहता है-यत्र स्वायाः तन्वः रोगं विहाय (मदन्ति)- जिस घर-परिवार में यदि किसी करण वा परिस्थिति-वश किसी को कोई शारीरिक वा किसी तरह का मानसिक रोग हो जाए तो वह किसी वैद्य-हकीम चिकित्सक-डॉक्टर की सलाह से वा किसी मानसिक चिकित्सक का किन्हीं साधु-सन्तों-विद्वानों के उपदेश-सदुपदेश,साधना सेवा स्वाध्याय सत्संग आदि से तन और मन के रोगों से-स्थूल और सूक्ष्म शरीरों की व्याधि और आधियों से मुक्ति पाकर विचरता है, तो वह तब स्वर्ग का सा सुख भोगता हैं। और अगर वह सूक्ष्म और स्थूल शरीर, अर्थात् मन और तन का सदा रोगी बनकर जीता है, तो फ़िर वह सदा आधि-व्याधियों से घिरा हुआ अर्थात् ईर्ष्या-द्वेष, काम क्रोध लोभ मोह अहँकार और चिन्ताओं से तथा शिरोवेदना-सिरदर्द, उदर

शूल-पेट दर्द, ज्वर बदहज़मी आदि-आदि रोगों से ग्रस्त होकर कष्ट-क्लेशों को ही पाता रहता है। वह भोजन करता है तो उसे पचता नहीं, भोजन नहीं करता, तो उससे भूखा भी नहीं रहा जाता। कभी उसे गैस ट्रबल है, तो कभी उसे सिर दर्द है; कभी उसे बुख़ार है, तो कभी उसे ज़ोर की खाँसी या ज़ोर का ज़ुकाम है; कभी उसके जोड़ों में दर्द है तो कभी उसकी कमर में दर्द है; कभी उसकी टाँग दुःखती है तो कभी उसका पेट दुःखता है; कभी उसे मधुमेह है, तो कभी उसको ब्लड-प्रैशर है; कभी उसे नकसीर है, तो कभी उसको बवासीर है, इत्यादि शारीरिक रोग भी मनुष्य को ऐसा हैरान-परेशान कर देते हैं कि मनुष्य का जीना कठिन हो जाता है। ऐसे ही किसी को कोई ऐसी भयंकर चिन्ता घेर लेती है वा किसी और मानस रोग का वह शिकार हो जाता है जिसके कारण जहाँ उसका मन सदा दुःखी रहता है, वहाँ उसके परिणामस्वरूप उसको अनेकों शारीरिक रोग भी घेर लेते हैं। जिसके कारण फ़िर न कभी उससे ढंग से खाया-पिया जाता है, न हि उसका खाया-पिया ढंग से हज़म होता है; न हि फ़िर ढंग से उसको समय पर नींद आती है, न ही कभी समय पर वह उठ पाता है। सोता है, तो उससे सोया नहीं जाता, जागता है तो उसका उठने को जी नहीं करता। उसका तो सारा बदन टूटा-टूटा सा रहता है। सोता है, तो ढंग से उसे आराम नहीं मिल पाता, जागता है तो ढंग से उससे कुछ काम नहीं हो पाता। यह सदा स्वयं हैरान-परेशान रहता है। बेटे-बहुएँ इसे जगह-जगह ले जाकर दिखाते हैं, तो दिखाने पर इसका कोई

रोग तो विशेष सामने नहीं आ पाता। यदि ये उसे कहीं दिखाते नहीं-किसी वैद्य-हकीम-डाक्टर के पास उसे ले जाते नहीं, तो वह समझता है कि-"हमारी हालत दिन-प्रतिदिन गिरती जा रही है, पर फ़िर भी ये वहु-बेटे हमारा कुछ करते ही नहीं, इत्यादि।"

सो यदि आपको सामान्य खाँसी-ज़ुकाम-बुखार आदि हो, तो आप किसी वैद्य-हकीम-डाक्टर आदि से परामर्श करके औषधि लें, सात्विक सुपाच्य हल्के से हल्का भोजन करें, समय पर खाएँ, समय पर सोयें, समय पर ही भ्रमण करने जायें, वा हल्का सा व्यायाम करें इत्यादि। और अगर आपको मधुमेह हो, लो ब्लड प्रेशर हो वा हाई ब्लड प्रेशर आदि हो, तो आप दवा तो खायें ही, पर दवा से भी परहेज को आप अधिक महत्व दें। आपको टेनशन वा चिन्ता आदि कोई हो या ऐसी कोई बात मन में घुस गई हो, जो किसी भी प्रकार से निकाले नहीं निकलती हो, और जिसने आपका ढंग से खाना-पीना, सोना-जागना, रहना-सहना, किसी से ढंग से मिलना-जुलना और बात करना तथा हास्य-विनोद करके सदा प्रसन्न रहना हराम कर रखा हो, तो ऐसी अवस्था में सम्भव हो तो आप उस स्थान और वातावरण से अपने आप को पृथक् कर लें, नए व्यक्तियों और नए वातावरण में अपने को रख कर बीती बातों के भुलाने का यत्न करें। सदा के लिये हरे-भरे खेतों और बाग-बगीचों में जाकर फूलों से खिलना और चहुँ ओर अपनी सुगन्ध बिखेरना तथा भौंरों से तुम गुन-गुनाना और गाना सीखो। आप हलके से हलका खायें-पियें, खूब टहलें, हलका सा व्यायाम करें, साधु-सन्तों और विद्वानों का

संग करें, उनके पास बैठ-बैठकर उन्हीं को सुनें, उन्हीं की तरह सत्संग करें, स्वाध्याय करें। उन्हीं की तरह आप भक्ति भरे भजनों को गा-गा कर उस प्रभु के प्यार में ऐसे झूम जाएँ कि सभी चिन्ताएँ और फ़िकरें उस प्यारे प्रभु के चिन्तन और फ़िक्र में काफ़ूर हो जाएँ। सदा मस्त रहने-सदा प्रसन्न रहने-सदा खुश रहने का अभ्यास करें, और सोचें कि-'जो हुआ, सो वह प्रभु कृपा से अच्छा ही हुआ, जो हो रहा है, वह भी उसी के विधान से सब अच्छा ही हो रहा है और आगे भी जो होगा, वह भी सब अच्छा ही होगा। जो मुझे आज तक मिला वा मिल रहा है और मिलेगा भी, वह सब भी मेरे ही अच्छे-बुरे कर्मों का सब फ़ल था, है, और होगा भी। अतः किसी को न दोष दो, न ही किसी से कोई गिला-शिकवा करो। अच्छा यही है कि अन्य किसी को कोसने के स्थान पर आप अपने किये हुए कर्मों को ही वर्तमान सब परिणामों का कारण समझ कर भविष्य में सदा अपने कर्मों को ही अच्छे से अच्छा बनाने का प्रयास करें, उन सत्कर्मों के लिए अपने हृदयों की भावनाओं और विचारों को ही शुभ-उत्तम-पवित्र बनाने का हार्दिक प्रयास करें, तो निःसन्देह सब का घर-परिवार फ़िर स्वर्ग-स्वर्गाश्रम-सुख का धाम बन जायेगा। और अगर आप यह सब नहीं कर पाए तो फ़िर तुम्हारे ही इन स्थूल-सूक्ष्म शरीरों के अर्थात् इन तन-मनों के रोगों के कारण हृदय से न चाहते हुए भी तुम्हारे घर केवल तुम्हारे लिए ही नहीं, वरन् तुम सबके हिए ही नरक-दुःखालय—दुःख के धाम बन जायेंगे। तभी तो वेद ने कहा है कि-घर में जाने-अनजाने,

चाहे-अनचाहे यदि कोई स्थूल शरीर का वा सूक्ष्म शरीर का अर्थात् तन-मन का कोई रोग आ जाए, तो तुम हार्दिक पुरुषार्थ से सब मिल-जुल कर उससे मुक्ति पाने का प्रयास करो। इस से घर स्वर्ग— सुख का धाम बन जायेगा, और फ़िर तुम सब वहाँ हर्षित-प्रसन्न भी रहोगे। अन्यथा घर में यदि कुछ पदार्थ बनेगा तो सब खा सकेंगे, पर एक नहीं खा सकेगा। जो पदार्थ खा सकेंगे, वे सोचेंगे कि क्या ही अच्छा होता, यदि हमारा यह भाई, हमारी यह बहन, हमारा यह पिता, हमारी यह माता भी यह खा सकती! और इधर यह व्यक्ति सोचेगा कि देखो-" मैं चाहते हुए भी यह नहीं खा सकता!" इस प्रकार खाने न खाने वालों का अपने-अपने ढंग का दुःख होगा। कहीं मोह में आकर उस रोगी को वह वस्तु थोड़ी-बहुत यदि कोई खिलाता है, तो उसका रोग बढ़ता है। और नहीं खिलाता है तो फ़िर उसको उस वस्तु के लिए तरसता हुआ देखता है, तो वह वस्तु खाते हुए भी उससे नहीं खाई जाती। कई परिवारों में मैं ने ऐसा देखा है कि यदि किसी को आईसक्रीम वा हलवा-खीर आदि पदार्थ बहुत अच्छे लगते हैं और डाक्टर ने उसको मना किया हुआ है, तो उस व्यक्ति के प्यार में फ़िर अन्य घर के सदस्य भी उस पदार्थ को बनाने और खाने से बचते हैं जो उन्हें बहुत अच्छे लगते हैं। सो इन सब बातों को देखकर सब घर-परिवार के सदस्यों को यह प्रयत्न करना चाहिए कि घर के सभी व्यक्ति तन-मन से नीरोग हों-स्वस्थ हों। और फ़िर घर में जो भी कुछ बने, वह

सब खा पी सकें ताकि घर स्वर्ग बना रहे-सुख का धाम बना रहे और उसमें रहने वाले सब लोग सुखी, प्रसन्न रहें।

वर्षों व्यतीत्त हो गए, मैं कभी अम्बाला गया था।एक व्यक्ति मुझे मिलने आया। उसको रोग था मानसिक, जिसके कारण उसके शरीर पर ऐसा प्रबाव पड़ा कि फ़िर न उससे ढंग से कुछ खाया-पिया जाता था, न ही ढंग से उसको वह पचता था, न उसको ठीक नीन्द आती थी, न ही वह समय पर उठकर शरीर से हलका होकर कुछ काम धन्धा कर पाता था। १५ वर्षों तक तन की चिकित्सा होती रही, पर किसी तरह से भी वह ठीक नहीं हो पाया। अन्त में एक दिन निराश होकर वह एक साधु के समीप गया। उन्होंने उसके मन में घुसे हुए रोग को भाँप लिया और कहा कि-" तुम्हारे मन में कोई ऐसी बात घर कर गयी है, जो न ढंग से तुम्हें खाने-पीने देती है, और न ढंग से तुम्हें निश्चिंत होकर सोने देती है। न ही वह तुम्हारे खाए-पिये को ढंग से पचने देती है, इत्यादि। उस बात को तुम मुझे बतलाना चाहो या नहीं, पर अगर तुम उस बात को जब तक छोड़ोगे नहीं, उसको जब तक तुम समाप्त करोगे नहीं, तो फिर एक दिन वह बात ही तुमको गला-गला कर समाप्त कर देगी।" सन्तोष के लिए उस साधु ने उसे एक शीशी दवा की भी दे दी। जल्दी ही उस व्यक्ति ने घर जाकर पहले उस बात को बिल्कुल ही दिल से निकालने का संकल्प किया। उस बात को छोड़ना था कि दिन प्रति दिन वह नीरोग होता गया-स्वस्थ होता गया, और उसे फ़िर ढंग से नीन्द भी आने लगी, ढँग से

भूख भी लगने लगी, खाया-पीया भी तब सहज ही पचने लगा, शरीर भी तब उसको हल्का-हल्का लगने लगा, सब कार्य भी तब उसके सहज ही होने लगे। उसके मन का क्या ठीक होना था कि उसका तन भी तब ठीक हो गया, अर्थात् स्वस्थ सशक्त हो गया।उसके स्वस्थ सशक्त होने पर फ़िर केवल उसी का ही चेहरा नहीं खिल गया वरन् सब घर-परिवार के सदस्यों के मुख कमल खिल गए। घर में तब सबके चेहरे ही नहीं खिले वरन् सबके हृदय भी प्रमुदित और प्रफुल्लित हो गए। ऐसे ही घर का नाम तो वेद ने स्वर्ग बताया है- यही तो वैदिक सुख का धाम गृस्थाश्रम है।

अश्लोणाः-घर-परिवार में किसी भी व्यक्ति के अङ्ग भङ्ग न हों। अर्थात् न कोई घर में लूला हो, न कोई लङ्गड़ा हो, न कोई काना हो, न कोई बहिरा हो, तो ऐसा घर सदा सुखी और प्रसन्न रहता है। लूले-लंगड़े, काने-बहिरे व्यक्ति प्रायः घर में सुखी नहीं रहते। उनको अक्सर अपना लंगड़ापन-लूलापन, कानापन और बहिरापन खलता रहता है। भीतर ही भीतर वे अपने उस अंग-प्रत्यंग के अभाव में दुःखी रहते हैं। पर इस विषय में उनका कोई बस नहीं चलता, नहीं तो वे कुछ न कुछ करते भी। फ़िर भी वे इन अभावों को कृत्रिम् साधनों से यथाशक्ति दूर करने का प्रयास करते ही हैं। उनके इन अभावों और दुःखों को देखकर उनके माता-पिता, भगिनी-भ्राता और सम्बन्धी आदि भी प्रायः दुःखी होते हैं, परन्तु उन बिचारों का भी कुछ बस नहीं चलता। हाँ जहाँ तक उनका बस चलता है,

वे उनके लिए दौड़-धूप करते हैं, और उनको इन अभावों से उभरने के लिए प्रोत्साहित करते हुए सहायता-सहयोग भी देते ही हैं। यह सब कुछ कभी हमारे साथ न हो, इसके लिए विचारशील व्यक्ति सदा इन अपने अङ्ग-प्रत्यंगों का सदुपयोग ही करते हैं-सदा इन अङ्ग-प्रत्यंगों से सुन्दर-सुखद-शुभ-उत्तम-पवित्र कार्य ही करते हैं। पर अगर दुर्भाग्यवश ऐसा हो भी जाए तो फ़िर उन मनुष्यों को चाहिए कि सत्संग-स्वाध्याय-साधना आदि शुभ कर्मों से वे अपने जीवन के दृष्टिकोण को बदल कर ऐसा जीवन व्यतीत करें, ऐसे जप-तप, स्वाध्याय-सत्संग, भजन-कीर्तन आदि में अपना मन लगाएँ कि खुशी-खुशी, हँसते-हँसते, ही जीवन व्यतीत हो जाए! ऐसा व्यक्ति प्रायः घर-परिवार में ही नहीं वरन् गली-मुहल्ले में भी सदा हेय और हास्य-परिहास का कारण बनता है जिससे जहाँ उसको दुःख-कष्ट होता है, वहाँ घर-परिवार के धीर-गम्भीर बड़े लोगों को भी कष्ट होता है। पर वे बिचारे भी इसमें क्या कर सकते हैं। हाँ जिस दिन ऐसे व्यक्ति स्वयं ही पुरुषार्थ कर किसी ज्ञानी-ध्यानी बुद्धिमान्-विद्वान् कुशल व्यक्ति का सहारा लेकर किसी उत्तम गुण-कर्म में निपुण हो जाते हैं, तो जहाँ फ़िर वे स्वयं घर-परिवार और समाज में शान से और स्वाभिमान से सुख पुर्वक जी सकते हैं, वहाँ फ़िर अन्य भी उन उत्तम गुण-कर्म-स्वभावों के कारण उन्हें सिर-आँखों पर उठाए-उठाए फ़िरते हैं। फ़िर इन अभावों में भी वे प्रभु कृपा से अपने विशेष गुण-कर्मों से अपने घर-परिवार को स्वर्ग—सुख का धाम बना डालते हैं, और फ़िर वे सदा प्रफुल्लित भी रहते

हैं। पर अगर वे ऐसा कुछ नहीं कर पाते तो फ़िर जहाँ वे स्वयं दुःखी रहते हैं, वहाँ उनके कारण सारा घर भी किसी न किसी रूप में दुःखी और सन्तप्त बना रहता है। ऐसे व्यक्ति किसी को खेलते हुए देखते हैं तो ये दुःखी होते हैं, दौड़ते-भागते और नाना प्रकार के कर्मों को सहज ही करते हुए देखते हैं, तो ये दुःखी होते हुए अपने भाग्य को कोसते हैं। इससे घर के सारे वातावरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अतः इन्हें जीने को नई कलाओं को सीख कर जहाँ अपने को इस दुःख से उभारना चाहिए, वहाँ परिवार के अन्य लोगों को भी इन्हें यह सब महसूस नहीं करने देना चाहिए, ताकि घर में सुखमय-स्वर्गमय वातावरण बन सके, और सब, सदा वहाँ खुश-प्रसन्न रह सकें।

अङ्गैः अह्रुताः—घर में अङ्गवैकल्य भी दुःख का कारण होता है। अच्छा तो यह है कि घर-परिवार में सभी के अङ्ग-प्रत्यङ्ग ठीक हों, वे विकृत न हों, वे वक्र न हों, वे टेढ़े-मेढ़े न हों। क्योंकि यदि परिवार में किसी के अङ्ग-प्रत्यङ्ग वक्र होते हैं, टेढ़े-मेढ़े होते हैं, तो इससे जहाँ उस व्यक्ति को कष्ट होता है वहाँ उसके घर-परिवार वालों को भी कष्ट होता है। कई वर्षों की बात है मैं लुधियाना में किसी परिवार में गया था। वहाँ मेरा भोजन था। भोजन जब तक बन रहा था मैं ने एक बच्चे को वहाँ देखा जो लगभग ८-९ वर्ष का था। मैं ने उस बच्चे से पूछा-"बेटा!तुम कितने भाई-बहिन हो ?" वह बोला-" हम दो भाई हैं। एक मैं और दूसरा मेरा बड़ा भाई।" मैंने कहा कि-"क्या तुम मुझे अपने बड़े भाई के दर्शन कराओगे ?" इस पर

वह बोला-"मैं अभी उसको ले आता हूँ।" जल्दी ही वह अपने उस २३-२४ वर्ष के बड़े भाई को गोद में उठाकर मेरे सम्मुख ले आया। उसने मुझे प्रणाम किया। वह व्यक्ति भी प्रसिद्ध अष्टावक्र ऋषि सम अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गों से विकृत अर्थात् टेढ़ा मेढ़ा था। और हो सकता है कि वह आठों से ही नहीं वरन ९-१० अङ्गों से वक्र अर्थात् टेढ़ा-मेढ़ा हो। मैंने उस से बड़े प्यार से पूछा कि- "वत्स! तुम्हें इस शरीर में रहकर कोई कष्ट तो नहीं है ?" वह बोला -"श्रीमन्! मुझे इस शरीर में रहते हुए शारीरिक कष्ट इतना नहीं, जितना कि मुझे मानसिक कष्ट है। मैंनें उससे पूछा-"वह कैसे ?" तो इस पर वह बोला-"श्रीमन्! मैं २३-२४ वर्ष का हूँ और यह मेरा छोटा भाई ८-९ वर्ष का है। पर यह मुझे आपके दर्शनार्थ गोद में लाया है। यह सोच कर मुझे हार्दिक कष्ट हुआ है। मुझे तब बड़ा ही सुख अनुभव होता जब मैं बड़ा होकर इसको गोद में उठाकर आपके दर्शनार्थ लाता। पर दुःख यह है कि मैं बड़ा होकर भी ऐसा नहीं कर पा रहा हूँ और यह छोटा होकर भी मुझे प्यार से गोद में उठाकर आपके पास लाया है।" यह सब सुनाते हुए उसका दिल भर आया।" सो घर परिवार में किसी के अङ्गवैकल्य से जहाँ उस व्यक्ति को भीतर ही भीतर कष्ट अनुभव होता है, वहाँ अन्यों को भी उसके लिये कष्ट-दुःख होता है। वह घर में अन्यों की अपेक्षा अपने आपको हीन अनुभव करते हुए दुःखी होता रहता है। उसको देखकर प्रायः लोग उसकी हँसी भी उड़ाते रहते हैं और वह यह सब देखकर दुःख के साथ-साथ अपने भाग्य को

भी कोसता रहता हैं। बड़ा अच्छा होता है वह घर-बड़ा भाग्यशाली होता है वह परिवार, जहाँ अङ्गवैकल्य नहीं होता-जहाँ किसी के अङ्ग-प्रत्यङ्ग वक्र-टेढ़े-मेढ़े नहीं होते। पर अगर न चाहते हुए भी कर्मफ़लवशात् प्रभु की न्याय व्यवस्था से घर में कोई ऐसा बालक वा बालिका आ जाए तब सबको घबराना नहीं चाहिए, न ही बहुत-हैरान-परेशान होना चाहिए। उस बालक को अपने पूज्य माता-पिता आदि के सहयोग से अपने आपको दूसरे उत्तम गुण कर्म-स्वभावों एवं योग्यताओं से इतना ऊपर उठा देना चाहिए कि दूसरे उसकें व्यक्तित्व के सम्मुख अपने आपको हेय-तुच्छ अनुभव करें। ऐसे लोगों के सम्मुख महर्षि अष्टावक्र और महर्षि दयानन्द सरस्वती के गुरुवर प्रज्ञाचक्षु गुरु विरजानन्द जी सरीखे महापुरुष् सदा ही प्रेरणा के स्रोत बने रहेंगे। अतः उनसे प्रेरणा पाकर वे अपने जीवनों को ऐसा दिव्य बनाएँ कि अङ्गवैकल्य होने पर भी केवल सामान्य जन ही नहीं वरन् उच्च कोटि के विद्वान् - साधु-सन्त भी उन्हें धन्य-धन्य कहें। ऐसी स्थिति में शारीरिक दृष्टि से वह नरक-दुःख-कष्ट भी, स्वर्ग-सुख और शान्ति में बदल जायेगा। यह ऐतिहासिक सत्य है कि बालक अष्टावक्र के शरीर की इस दुःखमयी हास्यास्पद स्थिति के कारण उसके पिता उसको महाराजा जनक की अध्यात्म सभा में नहीं ले गए। पर अध्यात्मप्रिय बालक श्री अष्टावक्र से नहीं रहा गया। अतः वह स्वयं ही घिसट-घिसट कर वहाँ पहुँच गया। सम्भवतः द्वार की ध्वनि आदि से जब सब का ध्यान उस बालक अष्टावक्रं की ओर गया तो एक दम सब हँस पड़े। यह

देखकर अष्टावक्र लौट गया। महाराजा जनक ने पहले उस बाल
को भीतर आता हुआ देखा, फ़िर उसे यों लौटता हुआ देख
तो उसने तुरन्त किसी को भेज कर उसको भीतर लाने को क
पर वह आया नहीं। तब स्वयं राजा जनक उसको लिवाने आ
और बड़े ही अनुनय-विनय से उसे ले गए, और उसे ऊपर म
पर बिठाया। उसे बोलने का ज़ब अवसर मिला तो उसने अ
अध्यात्म से सबको चमत्कृत कर दिया और साथ ही व
बोला-"राजन्! मैं तो यहाँ इसलिए आया था कि यहाँ रा
जनक की अध्यात्म सभा में बड़े-बड़े ऋषि-महर्षियों से अध्यात्
सुनने को मिलेगा, पर यहाँ प्रवेश करते ही मुझे ऐसा लगा
यहाँ तो सब चर्मकारों की सभा है, तभी ही मैं लौटने लगा,
यह तो आप जैसे पार्खी महाराजा का आग्रह था जो मुझे य
तक लिवा लाया, नहीं तो मैं तो लौट ही गया था। यह स
सुनकर जहाँ सब के चेहरे उतर गए वहाँ मन ही मन उन
मस्तक भी उसके प्रति झुक गए, और तब दिल ही दिल
सबने उस ऋषि अष्टावक्र को धन्य-धन्य कहा। सो मनुष्यों
चाहिए कि वे अपने ऊँचेपन से अपने अङ्गवैकल्य रूप दुःख
भी सुख में बदल डालें और अपने घर-परिवार को भी अप
ऊँचेपन से नारकीय अवस्था से उभार कर स्वर्ग में बदल डालें
इससे सारा घर प्रमुदित हो जायेगा, तब घर में खुशी के मा
चाँदना ही चाँदना हो जायेगा, जिसमें फ़िर यह अङ्गवैकल्य रू
दुःख भी काफ़ूर हो जायेगा।

"तत्र स्वर्गे पश्येम पितरौ च पुत्रान्"-तत्र स्वर्गे पितरौ

पुत्रान् पश्येम-उस गृहाश्रम रूप स्वार्गाश्रम में-उस घर-परिवार रूप सुख के धाम में हम पितरों अर्थात् माता-पिताओं और पुत्र-पुत्रियों को देखें। इससे घर-परिवार का और भी रूप निखर आयेगा। सचमुच वह गृहस्थाश्रम तब और भी अधिक दिव्य बन जाता है जिसमें कि दम्पती जहाँ अपने घर में आने वाली पीढ़ी के रूप में पुत्र-पुत्रियों को देखना चाहते हैं, वहाँ वे अपने पितरों अर्थात् माता-पिताओं को भी देखना चाहते हैं। यों तो प्रायः आज कल इस गृहस्थाश्रम में जहाँ आने वाली पीढ़ी की हार्दिक अपेक्षा होती है, वहाँ जाने वाली पीढ़ी की दिल से उपेक्षा होती है। जहाँ आने वाली सन्तति को घर में लाड-प्यार से अपनाया जाता है, वहाँ जाने वाली पीढ़ी (में वर्तमान माता-पिता) का तिरस्कार कर उसको घर-परिवार से निकाल बाहर करने का प्रयास किया जाता है। जिस घर-परिवार में यह सब कुछ होता है वह घर स्वर्ग-सुख के धाम के स्थान पर नरक-दुःख का धाम बन जाता है। जो दम्पती आज अपने माता-पिता के साथ ऐसा बर्ताव कर रहे हैं, उन्हें स्वयं इस बात के लिये सदा तैय्यार रहना चाहिए कि कल उनके साथ भी ऐसा ही होगा - कल उनकी भी ऐसी ही दुर्दशा होगी। अतः उन्हें चाहिए कि वे जहाँ आने वाली पीढ़ी को अपने लिये वरदान समझें वहाँ वे इस जाने वाली पीढ़ी को भी अपने लिये वरदान समझें। वे पहले स्वयं अपने माता-पिता आदि की सेवा-शुश्रूषा करें, उन्हें श्रद्धा भक्ति और प्रेम से प्रथम प्रणाम करके उनका आशीर्वाद लें, फ़िर आने वाली पीढ़ी के रूप में वर्तमान सन्तति से प्रणाम पाकर उन्हें आशीर्वाद दें। वे दोनों

अपने बच्चों को शब्दों से उपदेश न देकर अपने जीवन से पाठ पढ़ायें कि माता-पिता वा दादा-दादी आदि की कैसे सेवा-शुश्रूषा की जाती है और कैसे उन्हें मान-सम्मान दिया जाता है, तथा कैसे उनके खान-पान, रहन-सहन, दवा और परहेज तथा सुख-सुविधाओं का ध्यान रखा जाता है। वे नर-नारी, दम्पती बड़े ही सौभाग्यशाली होते हैं जो आने वाली पीढ़ी से प्रणाम पाकर जहाँ उसे आशीर्वाद देते हैं वहाँ वे प्रति दिन जाने वाली पीढ़ी को प्रणाम कर उससे आशीर्वाद लेते भी हैं। वे शाक भाजी लाते और भोजन बनाते हुए जहाँ यह ध्यान रखते हैं कि बच्चों को खाने में क्या भाता है-क्या अच्छा लगता है, वहाँ यह भी ध्यान रखते हैं कि हमारे पितरों को-हमारे माता-पिता को क्या अनुकूल है, क्या कुछ उनको सहज पच सकता है। पुत्रों और उन पितरों के मध्य में रहते हुए वे अपने लिए तो कभी कुछ सोचते ही नहीं। एक घर में एक दम्पती ने बच्चों के लिए तो राजमाँ या उड़द की दाल और भिण्डी बना ली, और वृद्ध माता-पिता के लिए मूँग की दाल एवं लौकी-तोरी वा टीण्डे बना लिए। मैंने उनसे पूछा कि-"आपने अपने लिए क्या बनाया ?" तो वे बोले-"भाई साहब! अपने लिए क्या बनाना, शरीर ठीक हुआ-स्वस्थ हुआ तो बच्चों के लिए तो राजमाँ वा उड़द की दाल, भिण्डी आदि जो बनी उसमें से कुछ ले लिया और यदि स्वास्थ्य कुछ-ढीला हुआ-हज़ामा कुछ कमज़ोर हुआ, तो माता-पिता के लिए जो मूँग की दाल और लौकी-तोरी-टीण्डे आदि जो भी कुछ बना है, उसमें से कुछ ले लिया। अब इ

पुत्रों और पितरों के मध्य में भला हम अपने लिए क्या सोचें ? इन का हित सोचने और करने में ही हमारा हित है। इस तरह वे दम्पती जहाँ बच्चों की शिक्षा-दीक्षा का ध्यान रखते हैं, वहाँ वे इन दोनों का भी ध्यान रखते हैं, वहाँ वे इन माता-पिताओं के स्वाध्याय-सत्संग आदि का भी ध्यान रखते हैं। जहाँ बच्चों को मेले-वेले में घुमा-फ़िरा कर ये प्रसन्न करते हैं, वहाँ ये इनको सत्संग में समय पर ले जा कर छोड़ आते हैं, और सत्संग के बाद घर पर उन्हें वे ले भी आते हैं। वे जहाँ बच्चों के लिए खिलौने आदि लाते हैं वा हास्य-विनोद की पत्र-पत्रिकायें लाकर उन्हें तृप्त करते हैं वहाँ वे अपने माता-पिता के लिए यम-नियम, अष्टाङ्गयोग, क्रियायोग आदि पुस्तकें तथा महापुरुषों के जीवन चरित्र आदि लाकर उन्हें देकर उन्हें प्रसन्न करते हैं। वे अपने घर-परिवार में जहाँ पग-पग पर बच्चों के स्वास्थ्य और उनकी प्रसन्नता का ध्यान रखते हैं, वहाँ वे वृद्ध माता-पिताओं के स्वास्थ्य और उनकी प्रसन्नता का भी ध्यान रखते हैं, ताकि उनके हृदय से सहज ही उनके लिए स्नेह और आशीर्वाद प्रवाहित होता रहे। वे इसलिए अपने पूज्य माता-पिताओं एवं बच्चों को रखकर अपना सौभाग्य समझते हैं कि उनके माता-पिता घर में भूत को वर्तमान में उतारने की प्रेरणा करते हैं, वे उनको पाँचों यज्ञों की परम्पराओं में सदा बनाए रखने को उत्साहित करते हैं, और ये बच्चे उनके उज्ज्वल भविष्य की अनुपम निधि हैं। तभी तो इस मन्त्र में कहा गया है कि जहाँ हम अपने घर में बच्चों को देखें, वहाँ हम अपने पूज्य माता-पिताओं को भी देखें और जहाँ

हम अपने पितरों को देखें, वहाँ हम अपने पुत्रों को भी देखें। वे काम पर चले जाते हैं तो फ़िर यही इनके माता-पिता ही दादी-दादा के रूप में उनकी आने वाली सन्तति में सुन्दर-सुन्दर भावनाएँ भरते हैं, तथा उनमें सुन्दर-सुन्दर परम्पराओं को स्थापित करते हैं। माता पिता के सेतु से ही तो ये दादी-दादा और पोती-पोते परस्पर जुड़े रहते हैं। जहाँ ये सब विद्यमान रहते हैं, उसी स्थान को-उसी घर को स्वर्ग कहते हैं-सुख का धाम कहते हैं। यों अगर वे वृद्ध महानुभाव साधना-स्वाध्याय वा सत्संग के लिए कहीं वानप्रस्थाश्रम वा तपोवन आदि जाना चाहें तो उन्हें जाने दें। पर तो भी दम्पती को चाहिए कि वे अपने घर में उनका स्थान और अपनी आय में उनका भाग सदा बनाए रखें। यदि वे वहीं प्रसन्न होकर सतत रहना चाहें तो उन्हें रहने दें, पर समय-समय पर बच्चों सहित उनके पास जा-जा कर उनका कुशल-क्षेम पूछें और उन्हें यथोचित साधनों को प्रदान कर उनसे आशीर्वाद सहित उपदेश भी लिया करें।

सभी घर-परिवारों के सदस्यों को चाहिए कि वे सब परस्पर मिल-जुल कर अपने घर को स्वर्ग-स्वर्गाश्रम-सुख का धाम बनाने का प्रयास करें। यह तब होगा जबकि वे वेद के उपर्युक्त मन्त्र के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करेंगे। और तब वे वास्तव में सदा प्रसन्न रहेंगे।



हे गृहस्थो! तुम सदा हँसते-बसते रहो।

सूनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः ।
अतृष्या अक्षुध्या स्त गृहा मास्मद्बिभीतन
॥अ०७.६०.५॥

अन्वयः-गृहाः! अस्मत् मा विभीतन। (यूयं) सूनृतावन्तः सुभगाः, इरावन्तः, अतृष्याः, अक्षुध्याः, हसामुदाः स्त।

संक्षिप्त अन्वयार्थः- हे गृहस्थो! तुम सब हम सब ज्ञानी-विद्वान्-संन्यासी रूप अतिथियों से मत भयभीत होओ। (हम तुम्हें उपदेश देते हैं कि) तुम सत्य और मिठास युक्त वाणी वाले, सुन्दर ऐश्वर्यों वाले, उत्तम अन्न-जलों वाले होकर सदा अतृष्णालु और अभूखे होओ, अर्थात् सदा अन्न जल आदि से तृप्त रहो एवं हास्य विनोदयुक्त होओ।

इस मन्त्र में साधु-संन्यासी , ज्ञानी-विद्वान् सच्चे तपस्वी जन अतिथि के रूप में गृहस्थों के समीप जाते हैं और उन्हें घर-परिवार को ऊँचा उठाने और आगे बढ़ाने के लिए सदुपदेश देते हैं। वे उन्हें कहते हैं कि- हम अतिथि हैं, तुम श्रद्धा से हमारा सत्कार करो, हम तुम्हें सदुपदेश देंगे। सो वे कहते हैं-

अन्वयार्थः- (गृहाः!) हे सद्गृहस्थो! (अस्मद् मा विभीतन) तुम हम से भयभीत न होओ-तुम हम से किसी प्रकार की भी हानि की सम्भावना से डरो मत। [हम तुम्हारे घर-परिवारों के कल्याण के लिए, तुम्हें सदुपदेश देते हैं, सो तुम ध्यान से सुनो, और तदनुसार आचरण करो।] (सूनृतावन्तः) तुम सब घर-परिवार के सदस्य सत्य और माधुर्य युक्त उत्तम वाणी वाले,

उषाकाल में उठने वाले, सुव्यवस्था और सुन्दर मर्यादाओं वाले तथा सुमर्यादाओं में बन्धकर नृत्य करने वाले, (सुभगाः) सुन्द ऐश्वर्यों वाले, (इरावन्तः) उत्तम सात्विक अन्न आदि खाद्य पदार्थ वाले होते हुए (अक्षुध्याः अतृष्याः स्त) सदा भूख और प्यास रहित होओ। अर्थात् तुम्हारे घरों में इतना धन-वैभव और इत अन्न-जल दुग्ध आदि पदार्थ हों कि तुम्हारे घरों में को कपड़े-लत्ते के अभाव के कारण नंगा न रहे, सर्दी-गर्मी के कार कोई पीड़ित न रहे, और अन्न-जल आदि के अभाव में को भूखा-प्यासा न रहे। तुम्हारे सभी घरों में सब तरह से सब तृ परितृप्त रहें। (हसामुदाः) तुम सब प्रकार से तृप्त हुए-हुए स हास्य-विनोदमय जीवन वाले होओ, सदा भीतर-बाहर से प्रस होओ।

व्याख्याः— गृहाः! (यूयं) (अस्मद् मा विभीतन) गृहस्थो! तुम हम से भयभीत न होओ-तुम हम से डरो म इस मन्त्रांश में गृहस्थों के समीप उत्तम अतिथियों के रूप साधु-संन्यासी, ज्ञानी-विद्वान् आते हैं और उन्हें सम्बोधित कर कहते हैं कि-" हे घर-परिवार को चलाने वाले सद्-गृहस्थो! तु श्रद्धा और प्रेम से हमारा सत्कार करो। क्योंकि हम तुम सब निर्माण के लिए और तुम सबके कल्याण के लिए तुम्हारे समी आए हैं। हम तुम सबको जीवन में ऊँचा उठाने और आगे बढ़ा के लिए उत्साह, सदुपदेश और आशीर्वाद देने आए हैं। तुम स हमारे वचन-प्रवचनों को सदा उत्साहपूर्वक सावधान होकर सु

और तदनुसार आचरण करके अपने घर-परिवारों को हर दृष्टि से उन्नत- समुन्नत करो।

प्रायः गृहस्थ यह सोचते हैं कि घर पर जब साधु-सन्त, ज्ञानी-विद्वान् आते हैं तो उन्हें पहचानना कठिन होता है कि वे सचमुच साधु-सन्त वा ज्ञानी -विद्वान् हैं या कपट वेशधारी कोई शठ-धूर्त-ठग हैं। अतः वे उनसे डरते हैं, और बिदकते हैं। पर अगर कई को यह ज्ञात भी हो जाए कि ये साधु-सन्त, ज्ञानी-ध्यानी-विद्वान् सचमुच साधु हैं - सन्त हैं - विद्वान् हैं - ज्ञानी हैं - परोपकारी हैं, अपनी वाणी से सदुपदेश दे-दे कर ये सबका उपकार करते हैं, और अपने पाणी अर्थात् वरदहस्तों को सबके शिरों पर रख-रख कर और पीठों पर फ़ेर-फ़ेर कर ये सबको आशीर्वाद देते हैं, तो भी वे इसलिए उन वास्तविक दिव्य अतिथियों को अपनाते नहीं, उन्हें अपने घर-परिवार में लाते नहीं कि-''इनकों कुछ खिलाना-पिलाना पड़ेगा, इनकी कुछ सेवा-शुश्रूषा भी करनी पड़ेगी, इनके ठहरने और रहने-सहने की भी व्यवस्था करनी होगी, इनको कुछ दान-दक्षिणा भी देनी पड़ेगी। अर्थात् इनके स्वांगत-सत्कार, मान-सम्मान और विदाई आदि में समय भी पर्याप्त व्यय होगा, और धन-धान्य आदि भी पर्याप्त खर्च होगा इत्यादि।''परन्तु ऐसे व्यक्तियों को यह भली—भांति समझ लेना चाहिए कि इन .महापुरुषों के-इन साधु-सन्तों के-इन ज्ञानी-ध्यानी विद्वानों के घर पर आने से घर-परिवार के लोगों का जितना उपकार होता है-जितना भला होता है-जितना हित होता है-उसके मुकाबले में जो समय इनकी सेवा में लगता है, जो धन-धान्य इनके मान-सम्मान में व्यय होता है, वह अत्यन्त तुच्छ होता है।

अतः सद्गृहस्थों को यह सब कुछ न सोच कर उन साधु-सन्तों को-उन ज्ञानी-ध्यानी विद्वानों को समय-समय पर अपने घर-परिवारों में बुला-बुला कर श्रद्धा भक्ति और प्रेम से उनकी आव-भगत करनी चाहिये, मान-सम्मान पूर्वक उनके उपदेश सुनने चाहिये और तदनुसार आचरण कर-कर के अपने घर-परिवार के सदस्यों को ऊँचा उठाना चाहिए।

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती जब ९-१० वर्ष के बालक ही थे तो वे अपने छोटे-मोटे कुछ दुःखों के कारण अपने जीवन से इतने तंग आ चुके थे कि वे तब जीना ही नहीं चाहते थे। वे सोचते थे कि किसी तरह उनकी मृत्यु हो जाए और इन दुःखों से उनको छुटकारा मिल जाए। उनके पिता साधु-सन्तों के प्रेमी थे। अतः वे उनकी सेवा-शुश्रूषा को अपना अहोभाग्य समझते थे, उनके उपदेशों को सुनने में और उनके अनुसार आचरण करने में वे अपने समय और जीवन की सार्थकता अनुभव करते थे। एक बार की बात हैं कि एक साधु उनके गाँव के समीप ही ठहरा हुआ था। वे उन पर बड़ी श्रद्धा रखते थे। उनका पुत्र खुशहालचन्द भैंस चरा कर लाया ही था कि देर लगाने पर उनके पिता ने उसको थप्पड़ मारा और बहुत गुस्सा किया। फ़िर उसको जल्दी से उस संन्यासी के लिए भोजन ले जाने का आदेश दिया। वह भोजन लेकर चला. गया। रास्ते में वह अपने जीवन के दुःखों पर सोचता-विचारता और रोता रहा। साधु का स्थान आ गया तो उसने अपने आँसू पोंछे और जाकर प्रणाम किया और भोजन उनके सम्मुख रख दिया। स्वयं वह एक ओर खड़ा ही गया। स्वामी जी भोजन करने लगे तो उन्होंने

देखा कि खुशहालचन्द आज कुछ उदास है-उसका चेहरा कुछ कुम्हलाया हुआ है। उन्होंने पूछा- "प्यारे बेटा खुशहाल! तू आज उदास-उदास सा क्यों प्रतीत हो रहा है ?" वह बोला - "स्वामी जी! कुछ नहीं। मैं उदास नहीं हूँ।" स्वामी जी बोले- "बैटा! पर हमें तो ऐसा लग रहा है कि तू आज बहुत उदास है-बहुत दुःखी है। तू आ मेरे पास, क्या बात है।" स्वामी जी के ये प्यार भरे शब्द सुनकर वह उनके समीप आ गया और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा,और कहने लगा कि-"महाराज! मैं मरना चाहता हूँ, मैं बहुत दुःखी हूँ....।" स्वामी जी स्नेह से उसकी पीठ पर हाथ फ़ेरते हुए बोले-"प्रिय बेटा! मैं तो लोगों को मरने का नहीं वरन् जीने का उपाय बताता हूँ। तुम्हें गायत्री मन्त्र आता है?" खुशहाल बोला-"नहीं।" स्वामी जी बोले-"वत्स! लो मैं तुमको आज वह मन्त्र बताता हूँ। वह मन्त्र निम्नलिखित है-"ओ३म् भूर्भुवः स्वः..... धियो यो नः प्रचोदयात्।।" बेटा! प्रभात काल की शुभ घड़ियों में प्रतिदिन उठकर इस मन्त्र के भावों को अपने हृदय में धारण करते हुए तू इसका श्रद्धा भक्ति और प्रेम से जप करना। फ़िर तुम में मरने की नहीं वरन् जीने की इच्छा जग जायेगी। फ़िर तू दुःखी नहीं वरन् सब प्रकार से सुखी-खुशहाल हो जायेगा।" उस सच्चे साधु का वह उपदेश उस दिन उस बालक के हृदय में ऐसा घर कर गया कि सारा जीवन उसने उस मन्त्र को छोड़ा नहीं। उसी का ही प्रताप समझिये कि वह दुःखहाल सचमुच एक दिन खुशहाल बन गया। इतना ही नहीं वह उस मन्त्र को जपता-जपता एक दिन महात्मा

आनन्द स्वामी सरस्वती बन गया, और सबको इस पावन मन्त्र की दीक्षा देता हुआ वह गुलाब के फूल के समान सर्वत्र खिला हुआ स्वयं हँसता और सबको हँसाता हुआ, ज्ञान-ध्यान और पवित्रता की दिव्य महक से सारे वातावरण को महकाता हुआ अन्त में प्रभु को प्यारा हो गया।

हे सद्‌गृहस्थो! बोलो खुशहाल के पिता के घर का थोड़ा सा भोजन खा कर वह साधु उसके घर में क्या दे गया? दो-चार चपाती खा कर उस घर के एक बालक में वह ऐसा अमृत बरसा गया कि जिसने सारा जीवन उसकी चित्त रूपी भूमि को केवल हरा-भरा ही नहीं बनाया, वरन् उसके घर-परिवार को भी सदा सुख-सौभाग्यों से हरा-भरा कर दिया। फ़िर इतना ही नहीं, उस खुशहाल के अद्वितीय कार्यों ने उसके माता-पिता और उनके ग्राम जलालपुर ज़ट्टाँ को भी अमर कर दिया।

सो मैं लेखक इस तरह के ऐसे अनेकों घर-परिवारों को जानता हूँ कि जहाँ इन सच्चे-सुच्चे साधु-सन्तों के चरण पड़े, इन ज्ञानी-ध्यानी विद्वानों के पैर पड़े कि उन घरों में से सिग्रेट-बीड़ी-शराब, भाँग, चरस आदि अपेय द्रव्य विदा हो गये, अण्डे-माँस-मच्छली आदि अभक्ष्य पदार्थ लाने और खाने बन्द हो गए। लेखक को स्वयं ऐसे बहुत से व्यक्ति मिले हैं, जिन्होंने भरी सभाओं में इन अभक्ष्य पदार्थों के खाने-पीने से सदा-सदा के लिए तोबा की है। इन महापुरुषों के घरों में आगमन और सदुपदेशों से परिवार के परिवार सुधर गए। जहाँ सुरा के प्याले पिये जातें थे, जहाँ माँस-मच्छली और अण्डे खाए जाते थे,

तथा वाराङ्गनाओं के साथ रंगरलियाँ मनाई जाती थीं, वहाँ अब साधु-सन्त-विद्वानों के प्रभाव से सुपेय दुग्ध वा जूस के प्याले पिये जाते हैं, सुन्दर 'सात्विक पौष्टिक सुभक्ष्य आहार लिए जाते हैं, तथा साधु-सन्त-विद्वानों के संग से भजन-कीर्तन और उपदेशों से सारे वातावरण को स्वर्गमय दिव्य बनाया जाता है। इन्हीं महापुरुषों के आगमन का ही प्रभाव समझिये कि उन घरों में जहाँ प्रभु को कोई जानता भी नहीं था, वहाँ अब ब्रह्ममुहुर्त में उठकर उस परब्रह्म परमेश्वर का ध्यान किया जाता है, श्रद्धा से उसका गुण गान किया जाता है। जहाँ सब पहले अपनी जाठराग्नियों में दुग्ध-घृत, अन्न-रस आदि की आहुतियाँ देते थे, वहाँ अब व्यक्ति तब ही स्वयं कुछ खाते-पीते हैं जबकि पहले यज्ञाग्नि में घृत-भात-सामग्री आदि की आहुतियाँ प्रदान कर लेते हैं। जहाँ पहले अपने बच्चों को और अपने आपको खिला-पिला और पहना-ओढ़ा कर अपने कर्त्तव्य की इति-श्री समझी जाती थी, वहाँ अब इन महापुरुषों के प्रभाव से माता-पिता और दादी-दादाओं आदि को खिलाने-पिलाने आदि के उपरान्त कुछ खाय-पिया जाता है। (बड़ोदा में एक वृद्ध आश्रम में एक पुत्र अपने पिता को ले गया और अधिष्ठाता से कहा कि-"आप मेरे इस पिता को सम्भाल लें तो मैं आजीवन तुम्हारा उपकार मानूँगा।" इस पर उस आश्रम के संरक्षक ८५ वर्ष के वृद्ध सज्जन बोले-"बेटा! हम तो इसे सम्भाल भी लेंगे और सब प्रकार से इसके खान-पान, रहन-सहन का भी प्रबन्ध कर देंगे। परन्तु यह सब कुछ करने पर भी इसको वह सन्तोष और

प्रसन्नता नहीं होगी जो इसको आप और आपकी पत्नी खिलाने-पिलाने और सेवा-शुश्रूषा करने से होगी। और बेटा! हमारे पास तन से तो ज़रूर रहेगा, पर मन से यह तुम्हारे रहता हुआ तुम्हें ही सदा कोसता रहेगा। पर अगर तुम इसे गये और तुम दोनों ने इसकी जी-जान से सेवा-शुश्रूषा की, फ़िर उस समय जो इसके रोम-रोम से दुआएँ निकलेंगी-जो इस हृदय से आशीर्वाद निकलेगा, वह तुम्हें सदा हरा-भारा सुख-सौभाग्यों से सम्पन रखेगा।'' इस उपदेश का परिणाम है कि आज वह बेटा और बहु अपने उस पूज्य पिता को घर के लिए वरदान समझ कर उस की सेवा कर रहे हैं, वह पिता भी अपने दिल से निकले हुए आशीर्वचनों से निहाल कर रहा है।

ऐसे घर परिवार अब जब सच्चे-सुच्चे ऐसे साधु-सन्तों देखते हैं, ऐसे ज्ञानी-ध्यानी तपस्वी-विद्वानों को देखते हैं तो उन्हें अपने घर-परिवार में लेजा-लेजा कर उनके आतिथ्य में फू नहीं समाते, उनके साथ ये वार्तालाप करते हुए नहीं अघाते। अगर इनका उनके यहाँ आना नहीं हो पाता, कुछ खाना-पी और सेवा-सत्कार आदि नहीं हो पाता, कुछ वचन-प्रवच उपदेश-सदुपदेश नहीं हो पाता, तो फ़िर वे उदास हो जाते तो फ़िर वे कुम्हला जाते हैं, और आँखों के मार्ग से आँ बहाते हुए हार्दिक प्रेम में भर कर अपनी माँ से पूछते हैं-" जी, हम से क्या ऐसी त्रुटि हो गई है, हम से क्या ऐसी ग़ल हो गयी है कि अमुक विद्वान् अब की बार हमारे यहाँ न आ

कहीं और चला गया है, हमारे यहाँ न ठहर कर कहीं और ठहर गया है। यह बात जब उस माता-बहिन ने उस विद्वान् को कही, तो वे बड़े द्रवित हुए और भविष्य में जब कभी भी उस नगर में उनका आना बना तो सर्वप्रथम उसी परिवार में आने का निश्चय किया और उसके उपरान्त ही कहीं अन्यत्र जाने और कार्य करने का विचार किया।

एक बार एक विद्वान् एक आर्य समाज में गया प्रचार करने के लिए, तो उस समाज के सेवक ने उसको सीधा मुँह ही नहीं दिया। वह उनको जल-पान आदि की बात पूछना तो दूर रहा, उनको तो वह वहाँ ठहराने को भी तैयार नहीं हुआ। परन्तु वह विद्वान् जब वहाँ रहा, तो वह उनसे इतना प्रभावित हुआ कि पुनः वहाँ उनके आने पर उनके लिए फ़िर केवल आर्य समाज के ही द्वार नहीं खुल गए, केवल अतिथि शाला के ही द्वार नहीं खुल गए, वरन् उस सेवक ने अपने घर-परिवार के और उसके स्वयं के हृदय के भी द्वार उनके लिए खुल गए। तभी तो बड़े प्यार से उनके आगमन के स्वागत में उस सेवक ने अपने ही पैसों से एक किलो बूरा खाण्ड लाई और वह नीबू भी लाया और झट उसने शिकंजी बनाई। विद्वान् ने पूछा-"यह क्या ?" तब वह सेवक बोला-"महाराज! हमें मालूम है कि आपको गर्मी बहुत लगती है। इससे आप को बड़ी ठण्डक भी मिलेगी और प्यास भी बुझेगी। वह व्यक्ति गरीब होता हुआ भी तब अपने घर से उनको खिलाने-पिलाने में हार्दिक प्रसन्नता अनुभव करता था। क्योंकि उनके व्यवहार और प्रवचनों से उसको इतना सुख

अनुभव हुआ, इतनी शान्ति मिली कि वह तब उसके सम्मुख अपनी सेवा-शुश्रूषा और अपने खाद्य एवं पेय पदार्थों को बहुत तुच्छ समझता था। सो इस लिये वेद के अनुसार विद्वान् अतिथि कहते हैं कि-''हे गृहस्थो! तुम हमसे घबराओ नहीं, तुम हम विदको नहीं, हम स्वल्पाहार लेकर भी तुम अनेकों का पर्याप्त भद्र करने का प्रयास करेंगे, तुम्हारी इस एक खाट वा टाट सीमित स्थान पर सोकर भी हम तुम्हारे हृदय को विशाल बनाने का यत्न करेंगे। तुम सम्भवतः अपने भोजन से हमारे शरीर को तृप्त करोगे पर हमारा यत्न होगा कि हम तुम्हारे तन-मन और आत्मा को भी सुख शान्ति पहुँचाने का प्रयास करेंगे। सो इन विद्वानों की कृपा से जिन घरों में कभी पहले अपने और अपने बालकों के लिए ही केवल सब कुछ सोचा-विचारा और किया जाता था, आज उन्हीं घरों में ही, केवल मनुष्य रूप में तो वर्तमान भूखे-प्यासे और सर्दी गर्मी से परेशान व्यक्तियों के बारे में ही नहीं सोचा-विचारा और कुछ किया जाता है, वरन् भूखे खड़े हुए कौवे कुत्ते और गौ आदि प्राणियों की आँखों में झाँक कर उनकी भूख को मिटाने के लिए भी रोटी देने का सोत्साह प्रयास किया जाता है। इतना ही नहीं चींटियों तक के भी वहाँ हल्दी-आटा डालकर बलिवैश्वदेव यज्ञ किया जाता है।

सचसुच जिस दिन ये संन्यासी नहीं रहेंगे, ये साधु-सन्त नहीं रहेंगे, ये ध्यानी-ज्ञानी विद्वान् नहीं रहेंगे, तो फ़िर ये गृहस्थ बिखर जायेंगे, ये घर-परिवार टूट जायेंगे। भाई-भाई को तब नहीं पहचानेगा और बहिन बहिन को तब नहीं जानेगी। बहिनें भाई

को तब राखी नहीं पहनायेंगी और भाई बहिनों के विवाह संस्कारों में उनका पैर शिला पर धर कर उनकी अञ्जलियों में प्यार से खीलें नहीं डालेंगे....। घर के ये वृद्ध माता-पिता भी तब लुटक जायेंगे, इनको फ़िर कोई देखेगा नहीं, इनको फ़िर कोई खाने-पीने को पूछेगा नहीं, इनके कष्ट-क्लेशों को फ़िर कोई सुनेगा नहीं। फ़िर भी ये ढीठ बनकर घर-परिवारों में पड़े-पड़े अपने-अपने भाग्यों को रोयेंगे और बहु-बेटों के कर्मों को कोसेंगे। और अगर दुर्भाग्य से कहीं ये घर-बार छोड़-छाड़ कर काशी-वृन्दावन या हरिद्वार-ऋषिकेश में आकर किसी आश्रम-वाश्रम में आ बसे, तो फ़िर उनका उन घर-परिवारों में स्थान ही नहीं वरन् दाना-पानी भी उठ जायेगा-समाप्त हो जायेगा।

आज यदि किसी घर में दादी-पोती वा दादा-पोता रहते हैं तो उसका कारण यह सुदृढ़ दम्पती रूप सेतु हैं। और यह सेतु वेद-शास्त्रों ने बनाया हुआ है और साधु-सन्त विद्वानों ने उसे सब लोगों को समझाया हुआ है। आज यदि कोई बहिन भाई को राखी पहना रही है और कोई भाई विवाह संस्कार में लाजा होम के अवसर पर बड़ी श्रद्धा और प्रेम से अपने दायें हाथ से बहिन के चरण को शिला पर धर कर उसकी अञ्जलि में लाजा-खीलें डाल रहा है और उसकी घर से विदाई पर जो फूट-फूट कर रो रहा है, तथा दिल से अपने घर में उस प्रिय दीदी का अभाव अनुभव कर रहा है, इत्यादि, तो यह सब इन वेद शास्त्रों का और इनके प्रमाण दे-दे कर इन साधु-सन्त और विद्वानों के प्रवचनों का ही प्रताप है। अन्यथा तो इन वेद शास्त्रों के आधार

पर ही इन साधु-सन्त और विद्वानों के प्रवचनों के अभाव में ए ऐसा स्वार्थमय प्रवाह प्रवाहित होने लगेगा कि जिस में फ़िर कोई माँ होगी, न कोई बाप होगा; न कोई भाई होगा, न क बहन होगी; न कोई पति होगा, न ही कोई पत्नी होगी। ज्ञान इस प्रवाह के अभाव में सब पशुओं की तरह अपना-अप दाना-चारा खोजते रहेंगे, अपने-अपने भोगों को भोगते रहेंगे। फ़िर वहाँ कहीं प्यार दिखाई देगा और न ही कहीं शिष्टा प्रतीत होगा। इसलिये सब घर-परिवार के सदस्यों को चाहिये वे इस परोपकार परायण सच्चे-सुच्चे साधु-सन्तों को, ज्ञानी-ध्यानी विद्वान् महापुरुषों को अपना अहोभाग्य समझ इनका आदर-सत्कार करें, इनकी यथोचित आव-भगत करें, इनके उपदेश-प्रवचन आदि सुन-सुन कर और तदनुसार आच कर-कर के अपने जीवन को और अपने घर-परिवार को कृ करें।

उपर्युक्त वेद मन्त्र के आधार पर ये सच्चे-सुच्चे साधु-स अतिथि हम गृहस्थों को उपदेश देते हुए कहते हैं-

(गृहाः [यूयं] सूनृतावन्तः स्त) हे गृहस्थो! हे घर-परिवार रहने वाले महानुभावो! तुम सब 'सूनृतावन्त' होओ, अर्थात् सब परस्पर सत्य और मिठासयुक्त वाणी वाले होओ। अब कोई व्यक्ति किसी युवक से पूछता है-"बेटा! यह कौन है यह तुम्हारी क्या लगती है ?" इस प्रश्न के उत्तर में यदि युवक यह कहता है कि-"यह मेरे बाप की औरत है-यह पिता की पत्नी है-यह मेरे **Father** की **Wife** है।" तो

कहना सत्य तो है-ठीक तो है, पर यह मिष्ट-मिठासयुक्त नहीं है, और शिष्ट-शिष्टाचारयुक्त भी नहीं है। पर इसी प्रश्न के उत्तर में यदि वह युवक यह कहे कि -"यह मेरी माँ है-यह मेरी माता जी है-यह मेरी Mother है, तो यह कहना सत्य भी है, मिष्ट और शिष्ट भी है, अर्थात् मधुर और प्रिय भी है।

इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति उस युवक से पूछे कि-"अमुक व्यक्ति कौन है ?" अब यदि वह युवक इस प्रश्न का उत्तर देता हुआ कहे कि-"वह मेरी माँ का खसम है-वह मेरी माँ का पति है-वह मेरी Mother का husband है, तो यह कहना सत्य तो है, पर मधुर-प्रिय और शिष्ट नहीं है। पर इसी प्रश्न के उत्तर में यदि वह युवक यह कहता है कि-"यह मेरा पिता है-यह मेरा पूज्य पालन-पोषण करने वाला पिता है, तो यह कहना जहाँ सत्य है, वहाँ यह मधुर-प्रिय और शिष्ट भी है।

सो घर-परिवार के सभी सदस्यों को चाहिए कि वे अपने घर-परिवार में परस्पर एक दूसरे से जब बोलें, तो वे सच्च ही बोलें और मधुर तथा शिष्ट भी बोलें। अर्थात् उनकी वाणी में जहाँ सत्य होना चाहिए वहाँ मिठास-माधुर्य भी होना चाहिये। यदि

१९४७ से पूर्व एक पिता ने पैशावर से अपने पुत्र को विदेश पढ़ाने भेजा। वापिस आने पर बड़ी भारी भीड़ के साथ वह हारों से लाद कर ससम्मान पुत्र को लेने के लिए स्टेशन आए। हाथ मिलाते ही उस पुत्र ने एक ऐसा ही प्रश्न किया कि जिससे उसके पिता को इतना धक्का लगा, कि वह वहाँ से तुरन्त लौट गया और सदा सदा के लिए वह उस पुत्र से विमुख हो गया।

उनकी वाणी में सत्य है पर माधुर्य-मिठास नहीं है। तो वे वेदानुसार नहीं हैं। और अगर उनकी वाणी में मिठास-माधुर्य है, पर सत्य नहीं है, तो भी वे वेदानुसार नहीं चल रहे हैं। अतः उनकी वाणी में ये दोनों ही गुण सदा विद्यमान रहने चाहियें। इन दोनों में से कोई एक गुण किसी मनुष्य में हो, पर दूसरा न हो, तो अगले मनुष्य को बढ़ी पीड़ा होती है-बड़ा कष्ट होता है। जैसे कोई व्यक्ति बहुत मधुर बोलता है पर उसके माधुर्य में छल-कपट वा झूठ समाया रहता है, तो बहुत जल्दी उसका वह माधुर्य भी मनुष्य को भारी लगने लगता है और फ़िर वह उससे सदा दूर-परे रहने का प्रयास करता है। पर अगर वह सच्च बोलता है, पर बहुत कड़वा वा कर्कश बोलता है, तो तब उसका सत्य भी मनुष्य को अखरने लगता है। और वह तब उससे भी सदा दूर रहने का प्रयास करता है। पर कई बार मनुष्य उस कड़वाहट को भी सहज अंगीकार कर लेता है कि जिसके पीछे अत्यन्त हित हो। वह उस कड़वाहट को भी पसन्द करता है जिसके पीछे बहुत प्यार हो, बहुत भलाई हो। इसलिए कोई बच्चा जब कड़वी दवा के पीछे भी अपनी पूज्य माँ और वैद्य-डाक्टर का मधुर प्रिय हित भरा हृदय देखता है, तो वह उस कड़वी दवा को भी सहज निगल जाता है। पर इस हृदय की सच्चाई के साथ-साथ माधुर्य भी हो ते वह फ़िर उसको बहुत भाता है।

एक बार रेलवे स्टेशन पर एक बड़े ही सुयोग्य व्याख्याता महात्मा बैठे थे जो अपनी गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे। गाड़ी

आने में अभी पर्याप्त देर थी। इतने में एक युवक उनके समीप आया और उसने बड़ी श्रद्धा से उनको प्रणाम किया। महात्मा जी ने पूछा-''बेटा!आपका परिचय ?'' वह युवक बोला-'' महात्मा जी! मेरा नाम यह है। मैंने आपके बहुत व्याख्यान सुने हैं। मुझे आप पर बड़ी श्रद्धा है। आज अचानक आप स्टेशन पर मिल गए। बड़ा ही अच्छा लगा। ''महात्मा जी! आपने जाना कहाँ है?'' महात्मा जी बोले-''बेटा, मैंने वाराणसी जाना है।'' युवक बोला-''महात्मा जी! मैंने भी बनारस-वाराणसी जाना है।'' यह कहकर उस युवक ने अपना बेग-झोला उस महात्मा जी के पास रखते हुए कहा-''महात्मा जी! आप मेरे इस झोले का ध्यान रखना। मैं अभी पानी पीकर तुरन्त आता हुँ।'' यह कहकर वह झट पानी पीने चला गया, और शीघ्र ही जल पीकर लौट आया फ़िर महात्मा जी बोले-''अच्छा बेटा। अब तू बैठ, मैं भी लघुशंका अर्थात् पेशाब हो आऊँ। अभी तो गाड़ी आने में पर्याप्त समय है।'' यह कहकर महात्मा जी तो बाथरूम चले गए। बाथरूम होकर आए और हाथ-मुख आदि धोकर जब तक वे अपने स्थान पर आए, तो तब तक वह युवक उस महात्मा जी का सम्पूर्ण मूल्यवान सामान लेकर कहीं सरक गया था। महात्मा जी ने आकर जब देखा, तो उस स्थान पर न तो वह युवक था और न ही उस [महात्मा जी] का वह मूल्यवान सामान था। यह सब देखकर महात्मा जी पर्याप्त हैरान-परेशान हुए। क्योंकि उस सामान में ही उनके रुपये-पैसे और टिकिट भी था। इसके अतिरिक्त टेप रिकार्ड और कपड़े-लत्ते भी थे। अब केवल

यहाँ दरी चद्दर और कम्बल का एक नग पड़ा था। अब ऐसी स्थिति में उस युवक को भी ढूण्ढ पाना कोई सरल काम नहीं था। क्योंकि जो चोर होता है वह चोरी करके भला फ़िर वहाँ कैसे टिक सकता है। महात्मा जी ने अपनी एक जेब में जो दस-बीस रुपये जल-पान आदि के लिए बाहर रख रखे थे। उन्हीं पैसों से वे किसी निकट के स्थान का टिकिट लाए और तब उन्होंने गाड़ी पर बैठ कर वहाँ से प्रस्थान किया। उस स्टेशन पर उतर कर वे अपने एक भक्त परिवार में गए। वहाँ उन्होंने उस गृहस्थ सज्जन से कहा कि— "रास्ते में यह सब कुछ मेरे साथ हो गया है। अतः अब मेरे पास न इन वस्त्रों के अतिरिक्त कोई और वस्त्र हैं और न ही कुछ रुपया-पैसा है जो मैं अपने अद्दिष्ट स्थान तक पहुँच सकूँ।" सो उस गृहस्थ सज्जन को यह सब सुनकर कष्ट तो बहुत हुआ, पर वे महात्मा जी से बोले कि-"महात्मा जी! चिन्ता न करें, आप स्नानादि करें, अभी थोड़ी देर में सब प्रबन्ध हो जायेगा।" सो उसने यथाशक्ति सब यथोचित प्रबन्ध कर दिया और महात्मा जी ने वहाँ स्नान-ध्यान आदि किया और भोजन आदि करके वहाँ से अपने उद्दिष्ट स्थान की ओर प्रस्थान किया। सो उस युवक में श्रद्धा भी थी, माधुर्य भी था, जिसके कारण उसने महात्मा जी को भी प्रभावित कर लिया। पर वह श्रद्धा और माधुर्य उसका केवल एक बाह्य प्रदर्शन मात्र था। उसके पीछे सच्चाई नहीं थी-सत्य न था। इस लिए उससे महात्मा जी को बहुत कष्ट हुआ और उन्हें बहुत धक्का भी लगा। अतः उन्होंने भविष्य में ऐसे माधुर्य पूर्ण व्यक्तियों से

भी अत्यन्त सतर्क रहने का निश्चय किया, ताकि पुनः उन्हें ऐसे विश्वास में आकर धोखा न खाना पड़े।

सो घर-परिवार के सदस्यों को चाहिए कि वे सब परस्पर एक दूसरे से सत्य एवं प्रिय व्यवहार करें-सच्चाई और मिठासपूर्ण व्यवहार करें। इससे परिवार के सदस्यों में जहाँ परस्पर प्रेम बढ़ता है, वहाँ उनमें विश्वास भी बढ़ता है। वेदानुसार विद्वान् गृहस्थों को सदुपदेश देते हुए कहते हैं कि-"हे घर-परिवार में रहने वाले महानुभावो! सत्य एवं मधुर वाणी के इस महत्व के कारण तुम सबको चाहिए कि तुम्हारी वाणी में सदा सत्य भी हो और मिठास भी हो। ऐसा सत्य भी न हो जो कड़वा हो, ऐसा माधुर्य भी न हो जो सत्य से विहीन हो। तुम्हारी वाणी की मिठास में धोखा न हो, छल न हो, कपट-फ़रेब न हो। ऐसे ही तुम्हारी सच्चाई में भी माधुर्य हो-मिठास हो, पर उसमें कढ़वाहट न हो, क्रोध न हो-गुस्सा न हो, गाली-गलोज न हो, झुँझलाहट न हो, इरिटेशन न हो।

सुगृहस्थों की इस 'सूनृतावन्तः' शब्द के अनुसार दूसरी पहचान यह है कि वे उषा वाले हों। 'सूनृता' कहते हैं 'उषा' को-प्रभात वेले को। उस 'उषा' वाले-प्रभात वेले वाले जो होते हैं, वे सूनृतावन्त अर्थात् उषा वाले कहाते हैं-प्रभात वेले वाले कहलाते हैं। वेद के अनुसार ज्ञानी-विद्वान् गृहस्थों को उपदेश देते हैं कि-"हे गृहस्थो-घरों में विराजमान रहने वाले महानुभावो! तुम 'सूनृतावन्त' होओ-तुम उषा वाले होओ-तुम उषर्बुध होओ - उषा अर्थात् प्रभात काल में उठने वाले-जागने वाले होओ-अर्थात् तुम

उषा वेले में-ब्रह्ममुहूर्त में उठने वाले बनो। उषर्बुध-उषाकाल-ब्रह्ममुहूर्त में उठने वाले वे बन सकते हैं जो पहले शीघ्र सोने वाले बनें। अब जो शीघ्र सोने वाले और शीघ्र जागने वाले होंगे-जो जल्दी सोने और जल्दी ही उठने वाले होंगे, तो वे केवल भारतीय मान्यताओं के आधार पर ही नहीं वरन् पाश्चात्य अतिप्रसिद्ध अंग्रेजी की जो कहावत है, उसके अनुसार भी वे सब तरह से सम्मुनत होंगे। "Early to bed and early to rise makes a man healthy wealthy and wise"-जल्दी सोना और जल्दी ही उठना मनुष्य को स्वस्थ-सशक्त, धनी-मानी और बुद्धिमान् बनाता है।"

हे घरों में विराजमान रहने वाले मनुष्यो! अब यदि तुम 'सूनृतावन्त' होगे-उषाकाल में उठने वाले होगे-ब्रह्ममुहुर्त में जागने वाले होगे, तो फ़िर तुम ब्रह्मयज्ञ भी कर सकोगे-परब्रह्म परमेश्वर के समीप बैठकर उसका श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से ध्यान भजन और गुणगान करते हुए तुम ब्रह्म अर्थात् महान् भी बन सकोगे। अरे भई! जब इस जगत् में कोई धनवान् के समीप बैठकर धनवान् बन सकता है, पहलवान् के समीप रह-रह कर पहलवान् बन सकता है, विद्वान् के पास जा-जा कर विद्वान् और बुद्धिमान् के निकट बैठ-बैठ कर बुद्धिमान् बन सकता है, गुणवान् की संगत में रह-रह कर गुणवान् बन सकता है, तो फ़िर तुम भगवान् के समीप बैठ-बैठ कर-ब्रह्म के निकट बैठ-बैठ कर ब्रह्म के समान ब्रह्म-महान् कैसे नहीं बन सकोगे। यों तो आप किसी भी समय उस परमेश्वर की उपासना करके अपने आपको उसके

सम्पर्क से दिव्य बना सकते हो, पर फ़िर भी इसके लिए जो सबसे उत्तम और अनुकूल समय है, वह उषाकाल-ब्रह्ममुहूर्त का ही है। और इसी समय को 'अमृत वेला' भी कहा जाता है। किसी कवि ने इस समय का सद्पयोग करने की बड़ी ही सुन्दर प्रेरणा दी है- अपनी इस कविता में -

अमृत वेले जाग अमृत बरस रहा।
प्रभु चिन्तन में लाग अमृत बरस रहा।।
नीरस जीवन में रस भरले। धार धर्म दुःख सागर तरले।
आलस निद्रा त्याग, अमृत बरस रहा।
अमृत वेले जाग अमृत बरस रहा।।

किसी अन्य कवि ने भी बड़ा सुन्दर कहा है-

हर रात के पिछले पहरे में एक दौलत लुटती रहती है।
जो जागता है सो पाता है, जो सोता है सो खोता है।।

इस प्रकार वेदानुसार सभी गृहवासियों को चाहिए कि वे सदा सवेरे ही सोवें और सवेरे ही उठें-शीघ्र ही सोवें और शीघ्र ही जागें, और परब्रह्म परमेश्वर के समीप बैठ कर उसकी श्रद्धापूर्वक आराधना करें। राजस्थान के एक सद्गृहस्थ के समान अपनी धर्मपत्नी, पुत्रियों और पुत्र को बड़े प्रेम से जगाते-उठाते हुए कहें-उमा वा उषा देवी! अमृत वेला हो गया है, बेटी मधु!सुबह हो गई है, बेटी सुधा! अमृत वेला हो गया है, बेटे सुरभित! पोह फ़ट गई हैं। अतः उठो, जागो, निद्रा त्यागो, और जल्दी से हाथ-मुँह धोकर आजाओ, और परम प्यारे एवं सब जग से न्यारे उस प्राण प्रिय प्रभु की श्रद्धा भक्ति और प्रेम से

गुणगान करो...।'' यदि सचमुच उस सद्गृहस्थ के समान तुम प्रति दिन ऐसा करते रहोगे, तो तुम्हारा भी घर स्वर्ग बन जायेगा, सुख-सौभाग्य का धाम बन जायेगा। तुम सब भी फ़िर उस भगवान् के सम्पर्क से भगवान् सम महान् गुणवान् बन जाओगे।

[१]'सूनृतावन्तः' का अर्थ सुव्यवस्था और सुमर्यादा वाले भी किया जाता है। सो गृह वासियों को चाहिए कि वे सब अपने आपको सुव्यवस्थाओं और सुन्दर मर्यादाओं में बान्धकर रखें। इससे घर-परिवार बड़े ही सुव्यवस्थित और सुमर्यादित रहेंगे, और घर स्वर्ग - सुख का धाम बन जायेगा। जैसे घर में एक व्यक्ति रात्रि को बाहर का ताला लगाकर ताली अपने स्थान पर सुव्यवस्थित रख देता है तो प्रातः उठकर भ्रमणार्थ जाने वाला व्यक्ति सहज ही सुनिश्चित स्थान पर सुव्यवस्थित रखी हुई ताली उठाकर ताला खोलकर भ्रमणार्थ जा सकता है। पर अगर रात्रि को ताला बन्द करने वाले ने सुनिश्चित स्थान पर ताली नहीं रखी। अर्थात् उसने सुव्यवस्था के पालन में लापरवाही की, तो प्रातः काल भ्रमणार्थ जाने वाला व्यक्ति ताली ढूण्ढने के लिए पहले स्वयं हैरान-परेशान होगा। फ़िर पत्नी वा पुत्री को जगाकर पूछेगा कि-''ताली कहाँ है ? क्योंकि ताला रात को तो उन्होंने बन्द ही नहीं किया। तब वह व्यक्ति झुञ्झलाता हुआ-इरिटेट होता हुआ पुत्र के पास जाकर उसको जगायेगा। और वह भी ''कहाँ ताली रखी है ?'' यह भूल जाने के कारण,

१. सूनृता-सुव्यवस्था, सुमर्यादा, तद्वन्तः सूनृतावन्तः।

अपने पिता को ताली कहाँ राखी है, यह नहीं बता पायेगा। या फ़िर आँखें मलता-मलता उठकर जैसे-तैसे ताली ढूण्ढ कर देगा, और वह व्यक्ति फ़िर तब कहीं भ्रमणार्थ जा पायेगा। तो ऐसे दुःखी होते हुए और खिजते हुए भ्रमणार्थ जाने से जो लाभ होता है; वह भी नहीं होगा, और घर का सब वातावरण इस छोटी सी इस अव्यवस्था से कितना अव्यवस्थित हो जायेगा ? सो सभी गृहवासियों को चाहिए कि वे सब घर की व्यवस्था में बन्ध कर रहें। इससे घर का सुख और मन की शान्ति बढ़ेगी। ऐसे ही सबको घर की मान-मर्यादाओं का भी बड़ा ध्यान रखना चाहिए। घर में बड़े-छोटों की पहचान रखनी चाहिए। बड़ों के मान-सम्मान का छोटे को ध्यान रखना चाहिए, और उनसे सदा शिष्ट व्यवहार ही करना चाहिए। पर बड़ों को छोटों के मान-सम्मान, इज्ज़त-बेईज़ती का भी सदा ध्यान रखना चाहिए। जब छोटे अबोध बालक हों तो उन्हें लाड-प्यार भी खूब दें। पर अगर वे कुछ बड़े होने लगें, तो कभी-कभी उल्टी-पुल्टी बातें वा उल्टे काम करने पर उन्हें रोकें-टोकें और उनकी ताड़ना भी करें। पर अगर वे अब षोडश वर्ष के हो गए हों तो शास्त्रानुसार "प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत" सोलह वर्ष के हो जाने पर उस पुत्र-पुत्री से पिता-माता मित्र-सखा, सखी-सहेली वत् व्यवहार करें। अर्थात् अब भी उसको पाप-तापों से बचाएँ और हित के कार्यों में लगाएँ। उसके दुर्गुणों को सबके मध्य में छुपाकर रखें और उसके गुणों का सर्वत्र बखान करते रहें, पर एकान्त में मिलकर उन दुर्गुणों से सदा उसको दूर रहने का सुझाव भी देते रहें। उस पर कभी कष्ट आ जाए- आपत्ति

आजाए, तो झंट उसके साथ विद्यमान रहकर उसे जी-जान से दूर करने का प्रयास भी करें, और इस विषय में जितनी भी उसकी सहायता कर सकें, उतना ही अच्छा हैं। इस आयु में भूल कर भी उसे चार व्यक्तियों के मध्य में बहुत रोकें-टोकें नहीं, बहुत समझाएँ-सुमझाएँ नहीं! मित्रों में वर्तमान रहने पर तो उसकी मान-मर्यादा का खूब ध्यान रखें! समय मिले तो एकान्त में बिठाकर मित्र के समान उसकी त्रुटियों का उसको अवश्य बोध कराएँ और भविष्य में उसे उन्हें पुरुषार्थ पुर्वक दूर करने और सुन्दर शिष्ट दिव्य जीवन बनाने की प्रेरणा दें। इस प्रकार घर-परिवार के सभी सदस्य जब सुव्यवस्थाओं और सुन्दर मर्यादाओं में बन्ध कर सदा आगे बढ़ने और ऊपर उठने लगते हैं तो इससे जहाँ उनका वह घर-स्वर्ग-सुख का धाम बनता है, वहाँ वह अन्य घर-परिवारों के लिए भी एक आदर्श बनकर उन्हें भी तदनुसार आगे बढ़ने और ऊपर उठने की प्रेरणा करता है।

इस 'सूनृतावन्तः' शब्द का एक और भी अर्थ है। वह यह है कि-'सूनृता' का अर्थ है 'सू-नर्तक'[सु-नृती नर्तने] सुन्दर ढंग से नाचना-गाना [तदून्तः- सूनृतावन्तः] अर्थात् घर-परिवार के लोग 'सु-नर्तन' वाले हों, सुन्दर मर्यादाओं में बन्ध कर नाचने-गाने वाले हों, इस तरह वे सब सदा अपने को सुखी और प्रसन्न रखें। 'सु-नर्तन' का अर्थ है कि वे सुन्दर ढंग से नाचें-गाएँ- सुखद नाचें-गाएँ=शिष्ट होकर नाचें-गाएँ, ताकि उनके शरीर मन स्वस्थ, सशक्त और प्रसन्न रहें, और उनका यथोचित विकास हो। पर यह ध्यान रहे कि वे नंगे नाच कभी न नाचें, और अशिष्ट-अभद्र-अमर्यादित गन्दे गाने भी कभी न गाएँ। क्योंकि

इससे आगे चलकर घर-परिवार का वातावरण दूषित होता है, उन बच्चों के दिलो-दिमाग़ बिगड़ते हैं, उनके मनो-मस्तिष्क विकृत होते हैं, खान-पान, रहन-सहन,आहार-व्यवहार और आचार रजोगुणी और तमोगुणी होने लगते हैं। इससे फ़िर 'सूनृतावन्तः' शब्द के पिछले अर्थों के अनुसार जो घर-परिवार वालों में सुव्यवस्थाएँ-सुमर्यादाएँ और शिष्टताएँ होती हैं, वे सब भी धीरे-धीरे टूटने और छूटने लगती हैं। फ़िर समय पर खाना-पीना, सोना समाप्त हो जाता है, समय पर सुबह उठना भी खत्म हो जाता है। ऐसी दशा में जब सबके जीवन विकृत बन जाते हैं तो तब सबका एक दूसरों से सत्य बोलना और वह भी फ़िर मधुर बोलना तो और भी कठिन हो जाता है। फ़िर सबका जीवन घर में दुराव-छिपाव वाला जीवन बन जाता है, झूठ-मूठ वाला जीवन बन जाता है। तब घर में एक दूसरे से कहा कुछ जाता है, किया कुछ जाता है। तब घर में कहने को सब अपने होते हैं, पर वास्तव में वे अपने न होकर किन्हीं औरों के हो गए होते हैं। और जिनके वे हो गए होते हैं, उन्हीं के लुभावने सलाह-मशवरों से-उन्हीं के विकृत विचार-विमर्शों से फ़िर वे घर परिवार नरक बन जाते हैं-दुःख का धाम बन जाते हैं। अतः 'सूनृतावन्त' शब्द के इस अर्थ के अनुसार आप घर में नाचें तो सही-घर में गाएं तो सही, पर ऐसें नाचें-गाएँ कि जिससे आपका तन-मन खिल जाए और घर-परिवार के वातावरण को आप महका कर मुदित-प्रमुदित कर दें, जैसे कि घर में खिला हुआ गुलाब का फूल सारे घर को सुरभित कर मुदित-प्रमुदित कर देता है।

वेद के अनुसार हमें ज्ञानी-विद्वान् इस मन्त्रानुसार उपदेश देते हैं-

'गृहाः! सुभगाः स्त'-हे गृहस्थ मनुष्यो! तुम सुभगाः अर्थात् सुन्दर सुखद [१]भगों अर्थात् ऐश्वर्यों वाले होओ, तुम सुधर्मों वाले होओ, तुम सुकीर्ति वाले होओ, तुम सुश्रियों-सुकान्तियों वाले होओ, तुम सुन्दर ज्ञान-विज्ञान वाले होओ, और तुम सुष्ठतया वैराग्यवान् भी होओ।

हे गृहस्थो! तुम समग्र सुभगों वाले होओ। अर्थात् तुम्हारे पास सभी प्रकार का सुन्दर ऐश्वय हो। पर वह समग्र ऐश्वर्य तुम्हारे पास आना चाहिए सुन्दर उपायों से। तात्पर्य यह है कि वह ऐश्वर्य लूट-पाट का नहीं होना चाहिए। मिलावट करके नहीं आना चाहिए, किसी का जेब काट कर नहीं आना चाहिए, छल-कपट, और धोखा-धड़ी से नहीं आना चाहिए, क्योंकि जो धन किसी को उजाड़ कर-बर्बाद करके तुम्हारे पास आयेगा, वह तुम्हें कैसें आबाद करेगा। जो धन दूसरों को दुःख-कष्ट-क्लेश आदि दे कर घर में आयेगा, वह धन भला तुमको कैसे सुख दे सकेगा ? दुःख देखर घर में लाया हुआ धन-वैभव तो तुमको दुःख ही देगा-सन्ताप ही देगा। अतः हे गृहस्थो! तुम धन-धान्यों से सम्पन्न होओ, सर्वविध ऐश्वर्यों से ऐश्वर्यशाली तो बनो, पर यह ध्यान रखो कि तुम उस धन-वैभव, ज़मीन-जायदाद, कार-कोठी के स्वामी मत बनो, जिसके स्वामी बनने पर दूसरे

१. ऐश्वर्यस्य, समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा।।

दुःखों-कष्टों में पड़ रहे हों-दूसरे बर्बाद हो रहे हों-दूसरे उजड़ रहे हों।

हे गृहस्थो-घर परिवार में रहने वाले महानुभावो! तुम सुभगों वाले बनो-सुधर्मों वाले बनो। अर्थात् घर-परिवार में तुम सब अपने-अपने धर्मों का -अपने-अपने कर्त्तव्यों का अच्छी तरह से पालन करो। घर में पत्नी को चाहिये कि वह अपने पतिदेव के सभी यज्ञमय उत्तम कर्मों में उसका सहयोग दे। ऐसे ही पति को भी चाहिये कि वह भी पत्नी के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को भली-भाँति प्रेम पूर्वक निभाए। दोनों मिलकर जहाँ अपनी आने वाली सन्तति का लालन-पालन करें, जहाँ उनके खाने-पीने, रहने-सहने, पढ़ने-लिखने आदि का ध्यान रखें, वहाँ वे अपनी पूर्व पीढ़ी अर्थात् माता-पिता की भी उपेक्षा न करें। तात्पर्य यह है कि उनकी सेवाशुश्रूषा के प्रति, उनके मान-सम्मान के प्रति, उनकी सुख-सुविधाओं के प्रति वे सजग रहें। क्योंकि इससे जहाँ उन को आने वाली पीढ़ी से आदर-सम्मान और श्रद्धा-भक्ति मिलेगी, वहाँ उनको इस जाने वाली पीढ़ी से भी हृदय से आशीर्वाद मिलेगा, जो कि इनको सदा हरा-भरा रखेगा-सर्वदा सुख-सौभाग्यों से सम्पन्न रखेगा।

गृहस्थों को चाहिये कि वे अपने जीवन में सदा ऐसे कर्म करें कि उन्हें जिससे घर-बाहर सदा यश मिले। 'कीर्तिर्यस्य स जीवति' क्योंकि शास्त्र कहता है कि - वास्तव में जीता वह है जिसका सर्वत्र यश होता है। अब जिसके कर्मों को देख कर घर वाले भी उसे कोसते हों और बाहर वाले भी, तो वह भी भला कोई जीवन है ? सो सब के विचार ऐसे उत्तम हों - सब के

व्यवहार ऐसे अच्छे हों; खाना-पीना, रहना-सहना, उठना-बैठना, बोलना-चालना, मिलना-जुलना, आदि सबका ऐसे ढंग का हो कि जिससे उनकी घर-बाहर सर्वत्र शंसा-प्रशंसा ही होती रहे। क्योंकि संसार में मनुष्य के लिये यह स्नेह-सम्मान, यश आदि सबसे बड़ा टानिक हैं। अतः इसको बनाए रखने के लिये सब मनुष्यों को बड़ा सावधान रहना चाहिये और बड़ा पुरुषार्थ भी करना चाहिये।

घर-परिवार वालों को सदा यह भी ध्यान रखना चाहिये कि वे सदा ऐसे कर्म करें कि जिनसे उनकी श्री-शोभा बनी रहे। वे कभी भी ऐसे कर्म न करें कि जिनसे उनकी शोभा घटे। 'श्री' कान्ति को भी कहते हैं। वे सदा ऐसे आहार-व्यवहार करें जिससे उनके शरीर की कान्ति-चमक-दीप्ति-आभा-प्रभा बनी रहे, प्रसन्नता बनी रहे। वे कभी भी ऐसे आहार-व्यवहार न करें, जिनके कारण से उनके चेहरे की आभा घटे वा उनको अपने घर-परिवार वा समाज में शरमिन्दा होना पड़े। उनके चेहरे जिससे खिले रहें, उनके मुख-कमल जिससे प्रसन्न रहें, उनकी आकृति की आभा जिससे बनी रहे, घर-परिवार वा समाज के सम्मुख जिससे उनका मुख उज्ज्वल बना रहे,—वे सदा ऐसे सुन्दर सुखद मधुर प्रिय व्यवहार करें।

गृहस्थों को चाहिये कि वे जहाँ धन-वैभवों-ऐश्वर्यों के स्वामी हों वहाँ ज्ञान से भी वे युक्त हों, ताकि उनका मस्तिष्क ज्ञान ज्योति से जाज्वल्यमान हो। तात्पर्य यह है कि धन के साथ-साथ ज्ञान से भी उनके घर सदा प्रकाशमान रहने चाहियें। जिन घर-परिवारों में केवल खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने और दुनिया

भर की सुख-सुविधाओं और विलास के साधनों की ही प्रायः चर्चा होती रहती है और उन्हें ही नित्य प्रति किसी तरह से पाने वा क्रय करने की होड़ लगी रहती है, वे क्या जानें इस ज्ञान के महत्व को? ज्ञान मनुष्यों को सदा स्वाध्याय सत्संग आदि से मिलता है। पर यह ऐसी दिव्य वस्तु-पदार्थ है कि जो मनुष्य के अनेकों संशयों का उच्छेद करता है और उन विषयों को भी यह उद्घाटित करता है कि जो परोक्ष होते हैं - जो हमारी इन्द्रियों से ओझल होते हैं। शास्त्र कहता है, जिसके पास सब कुछ है पर यह शास्त्रों का ज्ञान नहीं है - यह ज्ञान प्रकाश नहीं है, वह इन चक्षुओं - इन आँखों के विद्यमान रहने पर भी अन्धा ही है। भगवान् श्री कृष्ण जी भी गीता में बतलाने हैं कि - 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिहोच्यते।' "हे अर्जुन! इस ज्ञान के समान इस संसार में कोई और पवित्र और उत्तम वस्तु है ही नहीं।" अतः सभी गृहस्थों को चाहिये कि वे इन सब धन-वैभवों के साथ-साथ इस ज्ञान-प्रकाश को भी अपनाएँ- अपने घरों में वे स्वाध्याय - सत्संग आदि के द्वारा अपने ज्ञान को बढ़ाएँ। इससे क्या होगा ? इससे यह होगा कि वे इन ऐश्वर्यों में रहते हुए भी इनमें डूबेंगे नहीं, वरन् इन पर सदा तैरते रहेंगे। वे जहाँ इन ऐश्वर्यों से स्वयं सुख भोगेंगे वहाँ वे औरों को भी इससे सुख पहुँचायेंगे। वे इन सब ऐश्वर्यों के भोग में भी त्यागी बन सकेंगे। वे इनके राग में भी वैरागी हो सकेंगे। वे इनमें रहते हुए भी इनसे परे होकर जिस प्रभु ने सब कुछ दिया है उसके कृतज्ञता पूर्वक झूम-झूम कर गीत गा सकेंगे। वे इन ऐश्वर्यों में

रहते हुए भी उन पितरों अर्थात् उन माता-पिता, दादी-दादा आदि की कृतज्ञता-पूर्वक सेवा-शुश्रूषा कर सकेंगे कि जिनके आशीर्वादों और उत्तम सूझ-बूझ प्रदान करने से यह सब कुछ घर में आया है। तब ये उन साधु-संन्यासियों, ज्ञानी-ध्यानी-विद्वानों की भी नतमस्तक होकर आव-भगत कर सकेंगे कि जिनके उत्तम वचनों-प्रवचनों से उनका यह घर स्वर्गमय-सुखमय-यज्ञमय-आनन्दमय बना है, वे तब इन ऐश्वर्यों को पाकर, इनके मद में आकर कभी भी अपने भाग्य को सतत सराहेंगे नहीं और इन दीन-हीन, विचारे निर्धन-गरीबों को और इनके भाग्यों को कभी कोसेंगे नहीं। वे तो तब इस ज्ञान के प्रकाश से अपनी सम्पत्ति की तीक्ष्ण दूरबीन से इन विपत्तिग्रस्त मानवों की विपत्तियों को भली-भांति देख सकेंगे और उनको दूर कर-कर के इनकी इन हृदय से निकली हुई दुवाओं को पा सकेंगे कि - 'बेटा! जुग-जुग जीते रहो, बेटा! तुम्हारी जोड़ी बनी रहे, बेटा! तुम्हारे बच्चे जीते रहें, बेटा! तुम्हारा घर-परिवार सदा धन-धान्य से भरा रहे...!' ज्ञान तो एक ऐसी चीज़ है जो सबको अतिकाम, अतिक्रोध, अतिलोभ, अतिमोह, अत्यहँकार से उभार कर सम अवस्था में लाता है। मनुष्यों को यह भोगी से योगी बनाता है, घर-परिवार को यह नरक से स्वर्ग अर्थात् सुख का धाम बनाता है। अतः इस ज्ञान का प्रकाश परिवार के सब लोगों में सदा बना रहे, ऐसा प्रयास गृहस्थों को सतत करते रहना चाहिये।

घर-परिवार में ज्ञान के साथ-साथ मनुष्यों में वैराग्य भी रहना चाहिये। क्योंकि घर-परिवार में रहते हुए सदा यदि कोई

व्यक्ति बन्धु-बान्धवों के राग-मोह में फँसा रहेगा, सदा घर-परिवार की कामनाओं को ही पूर्ण करने में उलझा रहेगा, सदा इन सबको पूर्ण करने के लिये इस धन-धान्य के लोभ में ही लगा रहेगा, या इन सबके पूर्ण न होने पर क्रोध ही करता रहेगा, या इन सबकी लगातार पूर्ति होते रहने पर अभिमान में आकर कभी किसी की भी परवाह नहीं करेगा, तो ऐसे व्यक्ति का जीवन फ़िर दिव्य नहीं बन पायेगा। वैराग्य की भावना मनुष्य के मन में यदि रहेगी तो यह समय पर इन भोगविलासों से ऊपर उठकर समय पर उठकर अपने परमध्येय के प्रति सजग होकर अपने आराध्य देव की आराधना भी कर सकेगा, अपने स्वार्थों से ऊपर उठकर कुछ परोपकार वा परहित के कार्य करके इस लोक के साथ-साथ अपना परलोक भी संवार सकेगा। इसमें वैराग्य होगा तो यह विषय-वासनाओं से ऊपर उठकर कुछ धर्म के कार्यों को भी कर सकेगा, कुछ जन सेवा के कार्य भी यह कर सकेगा, खुद एकान्त में रहकर कुछ आत्मा-परमात्मा का चिन्तन कर अपने जीवन को दिव्य बनाकर औरों के लिये भी तब यह कुछ प्रेरणा का स्रोत भी बन सकेगा। घर-परिवार में कुछ सन्ध्योपासना, ध्यान-भजन आदि भी हो सकेगा, तब कुछ अपनों से परे हट कर परायों का भी भला किया जा सकेगा। अतः घर के राग में सबको सदा डूबे रहकर केवल बाह्यविकास में ही सदा नहीं लगे रहना चाहिये वरन् वैराग्य का सहारा लेकर घर को आन्तरिक विकास की ओर भी उन्मुख करना चाहिये। अतः 'हे गृहस्थो! तुम शनैः शनैः वैराग्यवान् बनो। तुम अपनी पत्नी, पुत्र,

धन-वैभव आदि-आदि में आसक्ति-प्रसक्ति को बढ़ाओ नहीं, वरन् कम ही करते जाओ। क्योंकि यह आसक्ति-प्रसक्ति जीवन में तुम्हें ऊपर उठने नहीं देगी, तुम्हें अपने पारिवारिक क्षुद्र घेरे से बाहर निकलने नहीं देगी, और यह तुम्हें पवित्र, सौम्य, सरल, शान्त, सन्तुष्ट, तृप्त और दिव्य नहीं बनने देगी, उल्टा तुमको कामी, क्रोधी, लोभी, मोही और अहँकारी ही सदा बनाए रखेगी। अतः तुम आसक्ति से विरक्ति की ओर अग्रसर होने का यत्न करो।

आगे वेद कहता है - 'गृहाः! इरावन्तः स्त ।' - हे सद्गृहस्थो! तुम अन्नवान् बनो। तुम्हारे घरों में पर्याप्त अन्नादि खाद्य पदार्थ एवं दुग्ध रस जल आदि पेय पदार्थ हों जिनके कारण घर में कोई भूखा-प्यासा न रहे। परन्तु ध्यान रखना, तुम्हारे घर में अन्न आदि भक्ष्य-एवं दुग्ध रस जल आदि पेय पदार्थ हों। तुम्हारे घरों में अण्डे, मच्छी, माँस आदि अभक्ष्य पदार्थ और शराब, भाँग, चरस, बीड़ी, सिग्रेट आदि अपेय पदार्थ कभी नहीं होने चाहियें। क्योंकि इनसे तुम्हारे घर-परिवार का भले ही थोड़ा-बहुत कुछ विकास हो सके, पर इन आहारों से तुम्हारा मानसिक आत्मिक विकास कभी नहीं होगा। भला जो दूसरों का जीवन लेकर स्वयं जीना चाहता हो, भला जो दूसरों को मार कर स्वयं अपना शरीर वा आयु बढ़ाना चाहता हो, उस व्यक्ति का भी कोई जीवन है। अरे मृतकों को तो कई कबरों में गाढ़ते हैं, कई अग्नियों में उनका दाह कर्म करते हैं, पर ये कैसे लोग हैं जो मृतकों को अपने उदर में डाल-डाल कर अपने उदरों को

कब्रिस्तान बना रहे हैं, या अपनी जाठराग्नि पर इन मृतकों को धर-धर कर अपने उदरों को शमशान बना रहे हैं। ऐसे पदार्थों को खा-पी कर भला कोई कैसे पवित्र और सात्विक बने रह सकते हैं ? अतः सद्गृहस्थों को ऐसे अभक्ष्य एवं अपेय पदार्थों को घर-परिवार में लाना ही नहीं चाहिये। क्योंकि इनसे बुद्धि एवं मन दोनों ही विकृत होते हैं। इनके मलिन और विकृत होने से फ़िर मनुष्य को जो नहीं सोचना चाहिये, वह भी वे सोचते हैं और जो नहीं करना चाहिये, वह भी वे करते हैं। अतः अन्ततोगत्वा उनके तन भी विकृत हो जाते हैं। इन पदार्थों के खाने-पीने से मनुष्यों को नाना प्रकार के रोग भी हो जाते हैं। अतः इन पदार्थों सें सदा सबको बचना ही चाहिये। भगवान् ने अनेकों प्रकार के उत्तमोत्तम अन्न, गेहूँ, चावल, चना, जौ, मक्का, बाजरा आदि; दालें-मूँग, उड़द, राजमाँ, अरहर, मटर, लोभिया; सब्जियाँ गोभी, आलु, कचालु, अरबी, लोकी, तोरी, भिण्डी, टीण्डे, शलजम, मूली, गाजर, टमाटर आदि; काजु, किशमिश, बादाम, छुआरे, अखरोट आदि; सूखे मेवे और सेब, आम, अमरूद, अनार, माल्टे, सन्तरे आदि; दुग्ध रस जल आदि सुन्दर-सुन्दर पदार्थ प्रदान किये हैं। इनका यथोचित प्रयोग करें तो जहाँ हमारे तन का विकास होगा वहाँ हमारे मानसिक और आत्मिक विकास में भी बाधा नहीं पड़ेगी। अतः सब गृहस्थों को चाहिये कि वे इन अभक्ष्य एवं अपेय पदार्थों से सदा अपने को एवं अपनी आने वाली सन्तति को परे-परे रखें और सात्विक भक्ष्य-सुभक्ष्य, पेय-सुपेय पदार्थों से सदा अपना एवं अपनी आने

वाली पीढ़ी का शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विकास करने का प्रयास करें।

'गृहाः! अक्षुध्याः अतृष्याः स्त।' हे गृहस्थो! हे घर-परिवार में रहने वाले महानुभावो! तुम सदा घर-परिवार में रहते हुए कभी भूखे-प्यासे न रहो। तुम्हारे घर-परिवार में खाने-पीने के पर्याप्त साधन होने चाहिये, ताकि तुम्हारे यहाँ कोई भूखा-प्यासा न रहे। तुम खूब पुरुषार्थ करो, मेहनत-मज़दूरी करो, खेत-खलियान में तन-मन से काम करो, समय पर हल चलाओ, समय पर बीज बोओ, समय पर खाद-पानी दो, समय पर गोडी करो, ताकि तुम्हारे खेत हरे-भरे होकर तुम्हें नानाविध खाद्य पदार्थों से-अन्नों से, दालों से, फूल-फ़लों से, शाक-भाजियों से, मेवों आदि से भरपूर कर सकें। ऐसे ही तुम अपने व्यापारों में जी-जान से लग कर काम करो, अपनी फ़ैक्ट्रियों में खूब कार्य करो। तुम अपने उत्पादनों को खूब-पर्याप्त बढ़ाओ। तुम अपने ग्राहकों को ईमानदारी से अच्छे से अच्छा सौदा दो। तुम उनके साथ सुन्दर लेन-देन का व्यवहार रखो। फ़िर अपने घरों में पुरुषार्थ से अर्जित सुन्दर-सुन्दर, सुखद-सुखद इतने पदार्थ और पेय पदार्थ लाओ कि घर-परिवार वालों को कभी खाद्य एवं पेय पदार्थों का अभाव ही न खटके। तुम्हें भूख लगे तो ऐसा न हो कि तुम्हारे घरों में भूख तो हो, पर उसको मिटाने के साधन न हों, ऐसे ही तुम्हारे घरों में प्यास तो हो-पिपासा तो हो, पर उसको मिटाने के लिये जल-रस न हो। घर में ऐसे पुरुषार्थी और बुद्धिमान् मनुष्य होने चाहियें कि वें सबसे बढ़कर जीवन के मुख्य आधार खाद्य एवं

पेय पदार्थों पर ध्यान दें, ताकि उनके यहाँ कोई भूखा-प्यासा न रहे। इतना ही नहीं कि केवल तुम्हारे घर के वासी ही भूखे-प्यासे नहीं रहें, कोई अभ्यागत बन्धु-बान्धव वा भिक्षुक आदि भी आपके यहाँ आए तो उसकी भूख-प्यास को भी आप अपनी भूख-प्यास समझ कर उसको मिटाने का प्रयास करें। मनुष्येतर काक-कुक्कुर वा गौ आदि प्राणी भी घर में रहें वा आएँ तों उन पशु-पक्षियों को भी तुम्हारे यहाँ खाद्य एवं पेय पदार्थ मिल सकें, ऐसा आप प्रयास करो। घर में अन्य सब वस्तुओं को गौण रखें, पर अन्नादि खाद्य एवं दुग्ध जल आदि पेय पदार्थों पर सब से अधिक बल दें। क्योंकि ये पदार्थ जीवन का मुख्य आधार हैं। इनको प्रधानता देकर तदनन्तर अपनी कपड़े-लत्ते आदि अन्य सब आवश्यकताओं पर भी यथोचित ध्यान देवें। घर में यदि खाद्य एवं पेय पदार्थों का अभाव होता है, घर-परिवार के लोग यदि भूखे प्यासे रहते हैं, तो इससे केवल उन भूखे-प्यासों को ही कष्ट नहीं रहता वरन् उनके रक्षक-संरक्षकों को भी यह सब देखकर बड़ी ही पीड़ा होती है। ऐसे यदि अभ्यागत बन्धु-बान्धव आ जाएँ और अपने घर पर हम उनकी भूख-प्यास को न शान्त कर सकें, उनको हम यथोचित खाद्य एवं पेय प्रदान करके उनकी भूख-प्यास न मिटा सकें, तो भी हम सद्गृहस्थों को बड़ा ही कष्ट होता है। अतः गृहस्थों को चाहिये कि वे इन पदार्थों की उपलब्धि के लिये हृदय से पुरुषार्थ करें, ताकि भगवान् भी उन पर कृपा कर उन्हें कृतार्थ करें।

आगे वेद गृहस्थों को उपदेश देता हुआ कहता है कि -

"गृहाः! हसामुदाः स्त।" हे गृहस्थो - हे घर-परिवार में विद्यमान रहने वाले महानुभावो! तुम अपने घर-परिवार में सदा हँसते रहो - सदा खुश रहो - सदा प्रसन्न रहो - सदा खिले रहो। पर तुम केवल मुख से ही हँसते न रहो बल्कि तुम मन से भी मुदित-प्रमुदित रहो। मनुष्य जब तन-मन से प्रसन्न होते हैं, तन-मन से जब वे खिल जाते हैं, तो इससे जहाँ उन मनुष्यों के अपने व्यक्तिगत जीवनों पर सुन्दर प्रभाव पड़ता है, वहाँ घर-परिवार के वातावरण पर भी उसका बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। ऐसा हास्य उतना लाभ कर नहीं होता कि जिसमें मनुष्य ऊपर से तो खुश-प्रसन्न दिखाई दे, पर भीतर से वह दुःखी हो। जैसे कि एक कवि के अनुसार कोई कहता है - 'हँसता था रात दिन में, दिल में खुशी नहीं थी' कि यों तो मैं सब के साथ रात-दिन हँसता हुआ प्रतीत होता था, परन्तु मेरे दिल में क़िसी प्रकार की तब प्रसन्नता-खुशी नहीं होती थी। वेद कहता है कि तुम ऐसा जीवन व्यतीत करो, तुम ऐसे सुन्दर पवित्र आहार-व्यवहार करो कि जिससे तुम सदा भीतर-बाहर से प्रसन्न रह सको, तुम सदा अन्दर-बाहरसे खिल सको। एक आर्टिस्ट फूल बनाता है, उसको वह ऐसा बनाता है, उस पर वह ऐसे ढंग से रंग की कूचिया फ़ेरता है कि वह खिला हुआ प्रतीत हो, पर वह खिलावट बाहर की होती है। परन्तु प्रभु जिस गुलाब आदि पुष्प को खिलाता है तो फ़िर वह भीतर से ही उसके खिलने का उद्योग करता है। तब उसके बाहर से खिलने के साथ-साथ उसके भीतर से महक भी निकलती है। ठीक वैसे ही घर-परिवार के लोग यदि भीतर से खुश हों - प्रसन्न हों,

मुदित-प्रमुदित हों, तो फ़िर उनके बाहर की हँसी का - प्रसन्नता का प्रभाव भी विलक्षण ही होगा। वेद कहता है वा वेदानुसार ज्ञानी-विद्वान् साधु-संन्यासी सब गृहस्थों को उपदेश देते हैं कि - 'हे गृहस्थो - हे घर-परिवार में रहने वालो! तुम सब परस्पर जहाँ सदा बाहर से हँसते रहो, वहाँ भीतर से भी तुम सब मुदित रहो - हर्षित रहो।'' जिस घर में सब लोग हास्य-विनोद के स्वभाव के व्यक्ति होते हैं - सदा खुश-प्रसन्न रहने वाले लोग होते हैं, उस घर में सदा सबका जहाँ शरीर स्वस्थ रहता है वहाँ उनका मन भी सदा मस्त रहता है। चिन्ता और टेनशन तथा डिप्रेशन आदि रोग उस घर से फ़िर सदा दूर रहते हैं। अब जिस घर-परिवार में सब सदा मुदित-प्रमुदित रहते हों - सदा सब खुश प्रसन्न रहते हों - सदा सब फूलों के समान खिले रहकर अपने चहुँ ओर के वातावरण को अपनी महक से महका देते हों - अपनी सुरभि से सदा सबको सुरभित कर देते हों, तो वह घर-परिवार भला फ़िर स्वर्ग क्यों नहीं कहायेगा - भला फ़िर वह घर 'सुख का धाम' क्यों नहीं बनेगा। अतः सभी गृहस्थों को चाहिये कि वे इस वेद के मन्त्रानुसार 'सूनृतावन्त' अर्थात् सत्य-मधुर वाणी वाले, सुभगों वाले - सुन्दर ऐश्वर्यों वाले, सुन्दर सात्विक अन्नों एवं पेयों वाले होकर, इनसे अपनी भूख-प्यास को बुझाते हुए सदा हँसते बसते रहें-सदा मुदित-प्रमुदित रहें, ताकि उनका घर स्वर्ग अंर्थात् सुखों का धाम बन सके।



सुख का धाम-स्वर्गाश्रम

स्वर्गं लोकमभि नो नयासि सं जायया सह पुत्रैः स्याम।
गृह्णामि हस्तमनु मैत्वत्र मा नस्तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः॥

अथर्ववेद १२.३.१७ ॥

अन्वयः - [प्रभो! त्वं] नः स्वर्गं लोकम् अभिनयासि। [तत्र वयं] जायया पुत्रैः सह सं स्याम। अत्र [अहं यस्याः] हस्तं गृह्णामि। [सा] मा अनु एतु। निर्ऋतिः नः मा तारीत्, अरातिः उ [नः] मा [तारीत्]।

संक्षिप्त अन्वयार्थः - हे प्रभो! तुम हमें स्वर्ग लोक की ओर ले जाते हो, ताकि वहाँ हम स्त्री-पुत्रों के साथ मिलकर रह सकें। इस (स्वर्गाश्रम रूप गृहस्थाश्रम) में जिसका मैं हाथ पकड़ूँ, वह मेरे अनुकूल चले। कष्ट हमें न प्राप्त हो, और शत्रु वा अदानभाव भी हमें न प्राप्त हो।

अन्वयार्थः - हे प्रभो! तुम (नः स्वर्गं लोकम् अभिनयासि) हमें स्वर्गलोक-स्वर्गाश्रम रूप गृहस्थाश्रम की ओर ले जाते हो। जहाँ हम (जायया पुत्रैः सह सं स्याम) पुत्र-पुत्रियों को उत्पन्न करने वाली पत्नी और उससे उत्पन्न हुए पुत्र-पुत्रियों के साथ मिल-जुल कर प्रेम से रहें। (अत्र हस्तं गृह्णामि) यहाँ मैं [इस गृहस्थाश्रम में] जिसका हाथ पकड़ूँ - जिसका पाणिग्रहण करूँ, (मा अनु एतु) वह मेरे पीछे चले - वह मेरे अनुकूल चले। अर्थात् वह मेरी [1]अनुव्रता हो। (निर्ऋतिः नः मा तारीत्) इस

१. पत्युरनुव्रता ।।वेद।।

गृहस्थाश्रम में दुःख-कष्ट-आपत्ति-मुसीबत हमें मत प्राप्त हो, (अरातिः उ [नः] मा [तारीत्]) और काम क्रोध आदि शत्रु वा अदानभाव भी हमें मत प्राप्त हो।

व्याख्याः- हे परमेश्वर! तू (नः स्वर्गं लोकम् अभिनयासि) हमें स्वर्ग लोक की ओर-अभिमुख करके उधर ही ले जाता है।

ऋषिदयानन्द के शब्दों में 'स्वर्ग नाम सुख विशेष के भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है।' अर्थात् स्वर्ग उसे कहते हैं जहाँ सुख विशेष का भोग होता हो और उस सुख विशेष के भोग के लिये जहाँ उसकी सामग्री उपस्थित रहती हो। वैसे इस 'स्वर्ग' शब्द का अर्थ होता है (स्वः-सुखं गमयति प्रापयतीति स्वर्गस्तं स्वर्गम्) 'स्वः' अर्थात् सुख को जो प्राप्त कराए, वह स्वर्ग कहलाता है। '[२]स्वर्गं लोकम्' में 'स्वर्ग' शब्द 'लोक' का विशेषण है। [१]लोक स्थान को कहते हैं, जिसको लोग देखते हैं। अब जो यह लोक - [२]जो यह स्थान हमें सुख विशेष और सुख विशेष की सामग्री उपलब्ध कराता है, वह सुख लोक-स्वर्ग लोक कहलाता है। और [३]जो स्थान हमें दुःख विशेष और दुःख विशेष की सामग्री की प्राप्ति कराता है, वह दुःख लोक वा नरक कहलाता है। अब जहाँ हमें सुख विशेष और सुख विशेष

---

१. 'लोक' संसार को-दुनिया को या इसके एक भाग को कहते हैं, इसको लोग देखते हैं, इसलिये इसको 'लोक' भी कहते हैं जैसे पृथिवी लोक आदि।

२. स्वर्ग- जहाँ सुख और सुख विशेष की समाग्री उपलब्ध हो, वह लोक-स्वर्ग कहलाता है।

३. इसके विपरीत 'नरक' नाम दुःख का भोग और उसकी सामग्री को कहते हैं।

के साधन उपलब्ध हों, वह स्वर्गमय स्थान ही देखने योग्य और रहने योग्य कहलाता है।

उपर्युक्त मन्त्र में जिस 'स्वर्ग लोक' का वर्णन है, वह 'स्वर्गलोक' गृहस्थाश्रम ही है। यह गृहस्थाश्रम ही वास्तव में इस संसार में एक ऐसा 'स्वर्गलोक' है, जहाँ सबको अपने-अपने ढँग से सुख मिलता है और उस सुख की सभी प्रकार की सामग्री भी प्रायः यहाँ उपस्थित रहती है, या फ़िर दम्पती - पति-पत्नी उसको उपस्थित रखने का हार्दिक प्रयास करते हैं। अथर्ववेद में एक गृहस्थ कहता है -

आहरामि गवां क्षीरमाहार्षं धान्यं रसम्।
आहृता अस्माकं वीरा आ पत्नीरिदमस्तकम्।।
अथर्व० २.२६.५।।

अर्थः - (इदम् अस्तकम्) यह मेरा घर है, जिसमें मैं (गवां क्षीरम् आहरामि) गौओं का दूध लाता हूँ, (धान्यं रसम् आहार्षम्) धान्य आदि खाद्य पदार्थ और रसीले फ़ल वा फ़लादि का रस-जूस लाता हूँ, (अस्माकं वीराः आहृताः) इसमें हमारे वीर पुत्र लाए जाते हैं वा हमारे वीर पुत्र उत्पन्न किये जाते हैं, (पत्नीः आहृताः) फ़िर उन पुत्रों के लिये पत्नियाँ लायी जाती हैं। अर्थात् उन पुत्रों के गृहस्थरूप यज्ञ में उनका सदा सहयोग करने वाली प्यारी-प्यारी पुत्रवधुएँ लाई जाती हैं।

वेद के अनुसार स्वर्ग लोक [स्वर्गाश्रम रूप गृहस्थाश्रम] वह है - सुख शान्ति को प्राप्त कराने वाला दर्शनीय घर वह है, जहाँ गौओं का अमृत तुल्य दूध लाया जाता है। जहाँ दूध, दही,

मक्खन, घी, तक्र-छाछ, पनीर आदि का कभी अभाव नहीं होता। नाना प्रकार के जहाँ धान्य-अन्न आदि खाद्य पदार्थ लाए जाते हैं। रसीले फ़ल वा फ़लों के रस वा औषधि-वनस्पतियों के सार वा जल की भी ज़हाँ बहुतायत रहती है। घर में जहाँ धीर-वीर, स्वस्थ-सशक्त, तन-मन से खुश-प्रसन्न पुत्र-पुत्रियाँ रहती हैं। फ़िर उन प्रिय पुत्रों के लिये उनके गृहस्थाश्रम रूप यज्ञ कार्य में सहायता-सहयोग करने वाली प्यारी वधुओं को विवाहित करके लाया जाता है, तथा पुत्रियों के लिये सुयोग्य वरों को ढूंण्डा जाता है।

इस स्वर्गलोक में - इस सुखरूप घर-परिवार में दुग्ध, दधि, नवनीत, घृत, पनीर, छाछ-मट्ठे आदि की कभी कमी न हो। अर्थात् ये वस्तुएँ घर में पर्याप्त हों। गेहूँ, जौ, चने, चावल आदि अन्न भी जहाँ खूब हों; दालों और हरी शाक-भाजियों की भी जहाँ बहुतायत हो; फ़ल-फ्रूट भी जहाँ खूब लाए जाते हों; रहने का ठिकाना भी जहाँ ठीक-ठाक हो, अर्थात् अच्छा-खासा हो। जिसमें यथोचित सुख-सुविधाएँ हों ताकि घर वालों को पर्याप्त सुख हो। पर यह ध्यान रहे कि घर में ज़हाँ घर वालों को पर्याप्त सुख हो, वहाँ बाहर वाले अतिथि महानुभावों को भी वहाँ कोई कष्ट न हो, उनके खाने-पीने और रहने-सहने की भी वहाँ समुचित व्यवस्था हो। बालक-बालिकाएँ माता-पिता की पावन छत्र-छाया में जहाँ खेलते-कूदते और किलकारियाँ मारते हों, विवाहित युवक जहाँ शनैः शनैः कार्य-व्यापार में अपने पिता के

दायें हाथ बन जाते हों, वहाँ पुत्रबधुएं भी घर परिवार में माताओं की पूर्ण सहायक बनें। इतना ही नहीं वरन् बहुत जल्दी ही वे अपने उत्तम क्रिया-कलापों से उन्हें सब प्रकार से निश्चिन्त कर दें। पुत्र भी शनैः शनैः इन घरों के ऐसे सुदृढ़ स्तम्भ बन जाएँ कि उनके पिता फ़िर बिल्कुल ही हल्के हो जाएँ। पत्नियाँ जहाँ अपने पतियों की राहों में आँखें बिछा देती हों, वहाँ वे अपने पतियों के पञ्चमहायज्ञों में भी उनकी मन, वचन और कर्म से सहयोगिनी बनकर उनका सहयोग करें। उनका पति यदि ब्रह्मयज्ञ-परब्रह्म परमेश्वर की उपासना में बैठना चाहता है तो उसके लिये जहाँ वह स्थान साफ़-सुथरा करके आसन बिछाए वहाँ उसी के साथ-साथ वह अपना आसन भी बिछा कर, यदि वह ध्यान करे तो यह ध्यान करे, वह भजन गाए तो यह भी उसके स्वर में स्वर मिलाकर भजन गाए, वह प्रायश्चित करे तो यह भी प्रायश्चित करे, वह सन्ध्या करे तो यह भी उसके साथ मिलकर सन्ध्योपासना करे। तात्पर्य यह है कि यदि वह ब्रह्मयज्ञ करे तो यह भी उसके साथ बैठकर ब्रह्मयज्ञ करे, वह देव यज्ञ-अग्निहोत्र करे तो यह भी उसके साथ बैठ कर समिधा, सामग्री और घृत भात आदि सब कुछ तैयार करके उसके साथ बैठकर देवयज्ञ-अग्निहोत्र करे। यज्ञ में वह घी की आहुति दे तो यह सामग्री की आहुति दे, वह यज्ञ में मन्त्रोच्चारण करे तो यह भी उसकें साथ स्वर में स्वर मिलाकर मन्त्रोच्चारण करे और उसके साथ ही स्वाहा कहे तथा आहुति दे। वह ब्रह्मयज्ञ-वेदयज्ञ अर्थात् वेद का स्वाध्याय करे तो यह भी करे। वह वेद पढ़े वा

सुनाए तो यह ध्यान से सुने; वह उस पर मनन करे तो यह भी उस पर चिन्तन करे। वह महापुरुषों का जीवनचरित्र पढ़े तो यह पत्नी उसे सुने, यह पत्नी पढ़े तो वह उसे सुने। पितृयज्ञ में वह नाना प्रकार के खाद्य एवं पेय पदार्थ लाए तो यह उनको संसिद्ध करे -- उनको पकाए - उनको बनाए और उसके माता-पिता को अपने हीं माता-पिता समझ कर उन्हें श्रद्धा और प्रेम से खिलाए-पिलाए। जब वे इनकी सेवा से कृतार्थ होकर-प्रसन्न होकर आशीर्वाद दें तो इनके हाथ जुड़े हुए हों और इनके सिर उनके सम्मुख नत हों - झुके हुए हों। वे उपदेश दें, कुछ निर्देश करें या कभी कुछ अनुभव भरी बात सुनाएँ, तो ये उसको ध्यान से सुनें। यदि घर में नन्दें आ जाएँ वा नन्दोई आजाएँ तो सास-ससुर अर्थात् माता-पिता के सब कार्यों से रिटायर-निवृत्त हो जाने पर भी ये दम्पती उनको इतना स्नेह दें, इतना सम्मान दें कि उनके माता-पिता का अपने समय का उनको दिया हुआ मान-सम्मान भी एक बार उनको फ़ीका लगने लगे। फ़िर देखना इस स्वर्गाश्रम का दृश्य कि वह कितना प्रिय लगता है। अतिथियज्ञ में घर में साधु-सन्त-ज्ञानी-ध्यानी-विद्वान् आएँ तो जहाँ पतिं उनके मान-सम्मान में आँखें बिछाये वहाँ नारी भी उनकी आव-भगत में कोई कमी न रहने दे। जहाँ पति उनके उपदेशों को सुने वहाँ नारी भी तुरन्त अपने कार्यों से निवृत्त होकर उनको सुने और तदनुसार आचरण करे, ताकि स्वर्ग के सुख का उनको अनुभव हो। बलिवैश्व देवयज्ञ में यह नारी दीन-दुःखी-अनाथों को कुछ दे, उनकी किसी न किसी रूप में

कुछ सहायता करे, तो वह नर देखे कि यह सब कुछ करते हुए उस नारी की जेब तो कहीं खाली नहीं हो गयी है! ज़रा भी उसकी कमी प्रतीत हो तो वह झट उसको भरने का प्रयास करे। पति जब प्रेम से उसकी जेब भरे तो यह पत्नी उस धन का ऐसा सदुपयोग करे कि उसका पति भी प्रसन्नता अनुभव करे।

ऐसे और भी अनेकों कार्य हैं जो इस गृहलोक को स्वर्ग बनाते हैं, सो सद्गृहस्थों को उन्हें अपनाने का सतत प्रयास करते रहना चाहिये। पर एक बात है कि जहाँ दुःख विशेष की सामग्री का ही नित्य संग्रह किया जाता है और दुःख विशेष को ही जहाँ भोगा जाता है, उस नरक में भगवान् तो हमको नहीं भेजना चाहता है पर हम ही यदि अपने ही क्रिया-कलापों के कारण उस नरक की ओर खुद-बखुद अर्थात् स्वयं ही सरकते जाते हों तो फिर भगवान् भी क्या कर सकता है। अब जो व्यक्ति घर में बीड़ी-सिग्रेट वा सिगार लाता है, हुक्का लाता है, भाँग-चरस-अफ़ीम लाता है, शराब लाता है, और उसे पीता है, और अगर घर-परिवार में कोई रोकता है तो फ़िर वह यह सब कुछ बाहर से पीकर आता है; वह घर में अण्डे माँस मच्छली लाता है और घर में बना कर फ़िर सब उसे खाते हैं। घर में परस्पर सब लड़ते-भिड़ते हैं। जैसे घर में नारी हो तो वह मानो आग का गोला हो, हर समय वह किसी न किसी बात को लेकर लड़ती-भिड़ती हो, गालियाँ उसके मुख से ऐसे निकलती हों जैसे मशीनगन से शत्रुओं पर गोलियाँ बरसती हों। वह भोजन

बनाती हो तो गुस्से में, वह झाडू लगाती हो वा कपड़े-लत्ते धोती हो, वा कुछ और कार्य करती हो, तो सदा तपते तवे के समान रहती हो, हँसी-खुशी तो जैसे उसके मुख पर कभी रहती ही न हो। बच्चे उससे डरके मारे कांपते हों, पति उसके भय के मारे बिदकता हो, और सोचता हो कि - किसी तरह अपने को खाना मिल जाए और हम खा-पीलें, इसी में ही भगवान् का शुक्र है।' पति जहाँ भीगी बिल्ली बना रहता हो, बच्चें जहाँ बिल्ली के घर में विद्यमान रहने पर चूहों के समान गुम-सुम हुए-हुए बिलों में छुपे हुए से रहते हों, स्नेह-लाड-प्यार का जहाँ नामो-निशान न हो, पति-पत्नी जहाँ सदा लड़ते रहते हों, बच्चे जहाँ किस्मत के मारे सदा माता-पिता के प्यार को तरसते हों, अतिथि आकर जहाँ अपना दुर्दिन एवं दुर्भाग्य समझते हों, धी-जंवाई = बेटी और दामाद जहाँ नित्य प्रति उन्हें समझातें हों कि - 'माता जी, पिता जी, यों मत लड़ा करो, दुनियाँ वाले क्या कहेंगे।' बालक-युवा जहाँ जन्म पाकर सदा अपनी किस्मत को कोसते हों, अपने भाग्य को रोते हों। भगवान् के ध्यान भजन कीर्तन की जहाँ कभी बात भी न होती हो, देवयज्ञ में कभी विद्वानों को बुलवाने और घर-परिवार में उनका सत्संग करने आदि का जहाँ कभी विचार ही न किया जाता हो, सदा जहाँ शराबी कबाबी दुष्टों का आना-जाना लगा रहता हों, सज्जनों की आव-भगत पर जहाँ ध्यान न दिया जाता हो, हमेशा ही जहाँ अपने ही उदर-पेट में रजोगुणी-तमोगुणी पदार्थों की आहुति दी जाती हो, धूप अगरबत्ती और यज्ञ-याग के कल्याणकारी प्रिय

धुओं का कभी अवसर ही न आता हो, नित्य बीड़ी-सिग्रेट-हुक्के आदि के धुएँ ही जहाँ निकाले और उड़ाए जाते हों, सदा गन्दी फ़िल्में जहाँ देखी जाती हों, गन्दे-भद्दे नंगे चित्र जहाँ दीवारों पर लगाए और देखे जाते हों, गन्दी-भद्दी ओछी पोशाकें जहाँ पहनी जाती हों, घटिया किसम के गन्दे नावल कहानियाँ-किस्से जहाँ पढ़े जाते हों, काम-क्रोध-लोभ का जहाँ सदा वातावरण बना रहता हो, माँ-बाप का जहाँ तिरस्कार होता हो, गौ-ब्राह्मण आदि का जहाँ बहिष्कार होता हो, अतिथियों को जहाँ भार समझा जाता हो, और सदा यह प्रायः कहा जाता हो कि - 'हमारे अपने तो खर्चे पूरे नहीं होते, तो हम इन बड़े-बूढ़ों के लिये कपड़े-लत्ते वा औषध दूध फ़ल आदि कहाँ से लायें, और कैसे लायें ? काम-वाम तो ये अब कुछ करते नहीं, सदा बैठे-बैठे रोते-झींकते और खाँसते-खूँसते रोटियाँ पाड़ते रहते हैं। मरते भी तो ये नहीं, जो फूँक-फ़ाँक कर इनसे हम पिण्ड छुडाएँ।' यह सब कुछ प्रायः जहाँ होता रहता है, वह 'नरक' है, और नरक की सामग्री का परिणाम है। प्रभुवर हमें ऐसे लोक में नहीं भेजता। हम स्वयं ही अपने कुसंस्कारों और कुकर्मों के कारण ऐसे दुःख विशेष और दुःख विशेष की सामग्री को भोगते रहते हैं। क्योंकि हम इस दुःख विशेष की सामग्री को इकट्ठा कर-कर के जो उसको खाते-पीते पहनते-ओढ़ते रहते हैं। जिस दिन भी कभी हमारा भाग्योदय होता है तो हमें किसी साधु सन्त ज्ञानी ध्यानी विद्वान् महापुरुष का संग मिल जाता है वा हृदय से अपनी इस दुरावस्था पर हमें दया आती है या फ़िर दूसरों के 'सुख के धाम

स्वर्गाश्रम रूप गृहस्थाश्रम को जब हम देखते हैं, तो हमें कुछ अपने जीवन एवं घर की अवस्था पर ग्लानि अनुभव होती है, या फ़िर कहीं सौभाग्यवश किसी महापुरुष का उपदेश-व्याख्यान सुनने को मिल जाता है, या फ़िर कभी भीतर से प्रभु प्रेणा ही प्रस्फुटित हो जाती है, तो फ़िर एक दम हमारे जीवन में परिवर्तन आता है। जैसे अंगुलिमाल को महात्मा बुद्ध मिल गया, बाल्मीकि को नारदमुनि मिल गया, कालिदास को विदुषी नारी विद्योतमा मिल गई, तुलसीदास को भगवान् के प्रति सजग करने वाली नारी मिल गई, अमीचन्द को महर्षि दयानन्द मिल गया, मुनशीराम को ऋषिवर दयानन्द मिल गया, तो फ़िर सद्य वे व्यक्ति बदल गए। शराब आदि की बोतलें आदि तब उन्होंने तोड़-ताड़ कर बाहर फ़ेंक दीं। उनके आहार-व्यवहार तब बदल गए, उनके खान-पान, रहन-सहन सब बदल गए, उनकी बोल-चाल सब बदल गई, उनके चाल-चलन सब बदल गए, उनके सोचने-विचारने और कार्य करने के सब तौर-तरीक़े बदल गए। फ़िर उनको समाज में मान-सम्मान मिलने लगा, बच्चों की पढ़ाई जो कभीं छूट गयी थी, वह फ़िर शुरू हो गयी। भोग-विलासों में जो धन का दुरुपयोग हो रहा था, वह धन बच कर पुनः बच्चों के निर्माण और घर-परिवार के कल्याण में व्यय होने लगा। बच्चों की शिक्षा पर अब पुनः ध्यान दिया जाने लगा। उनके खान-पान और रहन-सहन की फ़िर अब पूरी चिन्ता की जाने लगी। अब होटल-रेस्तुरेन्ट आदि से तौबा कर पुनः घर की देवियों के हाथों का भोजन खाने-पीने में ही अब अपनी

भलाई समझी जाने लगी। घर में नित्य अब स्वाहा-स्वधाकार की ध्वनियाँ गूँजने लगीं, भजन-कीर्तन और उपदेश के लिये अब साधु सन्त विद्वान् आने लगे, विशेष यज्ञ-यागों के लिये भी अब कर्मकाण्डी विद्वान् बुलाए जाने लगे। दान-दक्षिणाएँ भी अब श्रद्धा-प्रेम से दी जाने लगीं। विद्वानों का सेवा-सत्कार भी अब वहाँ किया जाने लगा, उनके भोजन-आच्छादन आदि की भी श्रद्धापूर्वक वहाँ अब व्यवस्था की जाने लगी, उनको अब श्रद्धा और प्रेम से वहाँ खिलाया-पिलाया भी जाने लगा। वहाँ अब आशीर्वाद भी दिये और लिये जाने लगे। चाय-काफ़ी सुरा-भांग का स्थान भी अब धीरे-धीरे दूध-रस, शान्ति-सुधा वा शीतल पेय आदि लेने लगे। सिग्रेट, बीड़ी, हुक्के, पान, तम्बाकू, गांजे-चरस आदि के स्थान पर अब वहाँ सोंफ़, इलायची, लोंग, मिश्री, टाफ़ी, स्वाद आदि द्रव्य पेश किये जाने लगे-सर्व किये जाने लगे-परोसे जाने लगे। अब वहाँ हवन-यज्ञ स्वाध्याय और सत्संग का एक अच्छा-खासा वातावरण सा बन गया है। इसलिये उसमें साड़ी-धोती-कुर्ता आदि पहन-पहन कर अब सब श्रद्धा प्रेम से बैठने लगे। बच्चे अब वहाँ निर्भय होकर किलकारियाँ मारते हुए खेलने कूदने लगे। बेटे-बेटियाँ अब वहाँ जन्म पाकर और वहाँ रहकर माता-पिता का प्यार पाते हुए अपना अहोभाग्य समझने लगे। प्रातः उठकर अब वहाँ माता-पिता और दादी-दादा एवं बड़े बहिन-भाईयों को श्रद्धा और प्रेम से प्रणाम किये जाने लगे, उनके द्वारा हृदय से - 'बेटी, जीती रहो; बेटे, जीते रहो, और खूब पढ़-लिख कर विदुषी और विद्वान् बनो, तथा सुख-सौभाग्यों से

सदा सम्पन्न रहो' इत्यादि आशीर्वाद दिये जाने लगे। पहले कभी वहाँ भिक्षुक को दुत्कारा जाता था, अब वहाँ उनको बड़े प्यार से भिक्षा प्रदान कर सत्कारा जाने लगा। काक-कुक्कुर और गौओं को जहाँ से डण्डे मारकर भगाया जाता था, वहाँ अब उनके लिये पहले से ही रोटी तैयार कर उनको सादर प्रदान कर विदा किया जाने लगा। माता-पिता आदि को जहाँ भार समझकर दुत्कारा-फ़टकारा जाता था, वहाँ अब उनको अपने घर का अहोभाग्य मान कर उन्हें श्रद्धा और प्रेम से खिलाया-पिलाया और पहनाया-ओढ़ाया जाने लगा। उनके खान-पान, रहन-सहन, दवा-दारू का अब पूरा-पूरा ध्यान रखा जाने लगा। साधु-सन्त, ज्ञानी-ध्यानी, विद्वान् अतिथियों को अब वहाँ भगवान् समझ कर पूजा जाने लगा। उनके उपदेश-व्याख्यानों को सुनना अब वहाँ अपना मुख्य कार्य समझा जाने लगा। प्रभु का भजन-कीर्तन अब वहाँ किया जाने लगा। उसमें आबाल वृद्ध सब बैठ कर प्रभु के भजन-कीर्तन में झूमने लगे, और उस प्यारे प्रभु का झूम-झूम कर अश्रुपूर्ण नेत्रों से कृतज्ञता पूर्वक सब धन्यवाद करने लगे...। इस सब दिव्य क्रिया-कलापों से वही नरक अब फ़िर स्वर्ग में परिवर्तित होने लगा। वहाँ दुःख का धाम अब सुख के धामरूप स्वर्गाश्रम में बदलने लगा।

हे प्रभुवर! (नः स्वर्गं लोकम् अभिनयासि) तुम तो हमें स्वर्गलोक-सुखमय लोक की ओर ही ले चलते हो, तुम हमें सुख और सुख के साधन प्रदान कर हमारे घर-परिवार को स्वर्गाश्रम ही बनाना चाहते हो। तुम हमें जौ प्रदान करते हो, तुम हमें गन्ने प्रदान करते हो, तुम हमें अंगूर जैसे सुन्दर फ़ल प्रदान करते हो,

ताकि उनका सेवन कर हम सुख पावें और अपने घर को सुख का धाम बनाएँ। पर अगर हम स्वयं ही 'जौ' जैसे सात्विकतम अन्न को सड़ा-सड़ा कर, गन्ने के रस के बने 'शीरे' को सड़ा-सड़ा कर, और अंगूर जैसे उत्तम फ़ल को सड़ा-सड़ा कर उनकी शराब बना-बना कर पीयें, तथा अपने घर को नरक बनाएँ, तो भगवन्! तू भी फ़िर क्या करे ?' तू तो वेदानुसार हमें विधिवत् अपने घर में यज्ञ आदि उत्तम कर्मों में सहयोग देने वाली पत्नियों को, घर में नेतृत्व करने वाली उत्तम कुशल नारियों को घर में लाने को प्रेरित करे, तू हमें 'स्योना' घर-परिवार में सबको सुख देने वाली नारियों को विवाहोपरान्त घर में लाने को कहे, तू हमें निवेशिनी-घर के सब कार्यों और उत्तरदायित्वों में हृदय से संनिविष्ट होने और उनको निर्वहन करने वाली दिव्य गुणों की खान नारियों को घर में लाने और उन्हें अपनाने को प्रेरित करे, तू हमें घर में इडा, पृथुष्टुका-पर्याप्त स्तुत्या नारी को, पृथिवी के समान सहनशील, सरस्वती ज्ञान-की गंगा जिसमें सतत प्रवाहित होती रहती हो, ऐसी नारी को; मही-हर दृष्टि से पूज्या, कन्या-कमनीया अर्थात् चाहने योग्य; सूर्या-सूर्य सम तेजस्विनी; अदितिः-विघ्न-वाधाओं से कभी न टूटने वाली-कभी हार न मानने वाली पत्युरनुव्रता-पति के अनुकूल चलने वाली वा पति के व्रतों-सत्कर्मों के अनुरूप चलने वाली; आपः-जल के समान शान्त और अन्यों को भी शान्त करने वाली वा जल के समान सब को तृप्त करने वाली; उषा-अपने ज्ञान प्रकाश से घर के अन्धकार को हरने वाली या उषा-प्रभात में उठने वाली; सूनृता-सत्य और मिठास युक्त वाणी बोलने

वाली-सत्य और मधुर प्रिय व्यवहार करने वाली; सुभगा-सौभाग्यों वाली-ऐश्वर्यों वाली धर्म परायण नारी को अपनाने को प्रेरित करता है, ताकि हमारा घर स्वर्ग अर्थात् सुख का धाम बने, पर यदि हम स्वयं ही अपने घर को नरक बनाने वाली, सदा अपने रूप-यौवन पर इठलाने वाली, क्लबों और किट्टी पार्टियों की शौकीन, सिग्रेट-शराब आदि अपेयों तक को भी पी जाने वाली, माँस-मच्छ़ली अण्डे आदि खाने वाली, पति कुल में भी अपने माँ-बाप के धन-वैभव के आधार पर सदा घमण्ड करने वाली, चार शब्द अंग्रेजी के सीख कर घर के सात्विक सुसभ्य सीधे-सादे अपने पूज्य माता-पिता, भगिनी-भ्राताओं तक को भी असभ्य और गंवार समझने और कहने वाली; खान-पान, रहन-सहन तथा बोल-चाल आदि में पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण कर अपने आपको अत्यन्त पठित और सुसभ्य जताने वाली; संयम-साधना-सत्संग-स्वाध्याय आदि को व्यर्थ की बातें समझ कर उनमें समय को व्यर्थ में बर्बाद करना समझने वाली, रात को बड़ी देर तक जागने और प्रभात में बड़ी देर तक सोती रहने वाली आदि-आदि नारियों को अपना कर अपने घर को नरक बनाएँ, तो फ़िर प्रभु भी आखिर क्या करे ?

इस घर में प्रभु से प्रिय पुत्रों की, तनयों की, सूनुओं की, वीरों की, सुवीरों की, सुपुत्रियों की, स्योनाओं की-सुखदायिनी कमनीय कन्याओं की, प्रिय-प्रिय दुहिताओं की प्रार्थना करनी चाहिये, पर अगर हम स्वयं ही ज़ब प्रभु से नित्य लड़के-लड़कियों की - सतत-निरन्तर परस्पर लड़ने-भिड़ने वाले लड़के-लड़कियों की प्रार्थना करें और उनके मिलने पर स्वयं भी

हम पति-पत्नी नित्य प्रति परस्पर लड़ें-भिड़ें, एक-दूसरे को सदा गालियाँ दें, एक-दूसरे पर झाड़ू-बेलन और डण्डे-जूतों के प्रहार करें, तो फ़िर ये लड़के-लड़कियाँ भी आपस में लड़ें-भिड़ें और एक-दूसरें पर चाकू-डण्डों आदि से प्रहार करें, वा घर के खेत-खलियान वा ज़मीन-जायदाद पर लड़ें-भिड़ें और एक-दूसरे को मारें-काटें, अथवा इस धन-वैभव का बंटवारा करने वाले माता-पिताओं को भी न बखशें, अर्थात् उन्हें भी मारें-काटें तथा परलोक का अतिथि बनाएँ, तो फ़िर उसका क्या इलाज हो सकता है। वह तो फ़िर साक्षात् नरक ही बन जायेगा।

सो प्रभु हमें सुख और इस सुख विशेष की सामग्री देकर हमारे घर को स्वर्ग बनाना चाहता है, तो फ़िर हमें भी सुख विशेष की सामग्री का ही वहाँ संग्रह करना चाहिये। और वहाँ सती-साध्वी, स्योना, निवेशिनी, सरस्वती, उषा, अदिति, इडा वा इला, मही आदि सरीखी नारियों को ही वधुओं के रूप में घर में लाना चाहिये। वहाँ पर दूध-दही, मक्खन, घी, छाछ आदि को ही लाना चाहिये। अण्डे माँस मछली, शराब,बीड़ी-सिग्रेट, भाँग, चरस, अफ़ीम आदि से सदा उसको बचाए रखना चाहिये। गन्दी फ़िल्मों से, गन्दे नावल, गन्दे रिसालों और घटिया किसम के किस्से-कहानियों की पत्रिकाओं से भी घर को सदा बचाए रखना चाहिये। घर को स्वर्ग बनाना हो तो सदा अच्छे घर-घरानों की ही बेटियों को उसमें बहु बना कर लाना चाहिये, भले ही ऐसी बेटियाँ हमें तीन कपड़ों में ही क्यों न मिलें। ऐसी न्यारी-प्यारी बेटियाँ बहुओं के रूप में जब घरों में आ बसेंगी तो फ़िर

'स्त्रियः श्रियो भवन्ति' - ये स्त्रियाँ ही घर की सच्ची शोभाएँ और वास्तविक लक्ष्मियाँ सिद्ध होंगी। और तब घर में सदा सुख शान्ति और प्रसन्नता का वातावरण बनेगा, तथा हमारा घर फ़िर स्वर्ग-सुख का धाम होगा।

यह गृहस्थाश्रम रूप स्वर्ग लोक ऐसा है कि जिसमें पत्नी को पति से अपने ही ढंग का एक शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक सुख मिलता है। इसमें वह पति को पाकर उसमें ऐसी खो जाती है, जैसे कि एक नदी समुद्र में खो जाती है। तब पति का जो गोत्र होता है वही उसका गोत्र हो जाता है, तब पति का जो घर होता है वही उसका घर बन जाता है। उस घर में जो उसका पति होता है वही उसका सबसे बड़ा देवता हो जाता है, वही उसका सच्चा जीवन साथी बन जाता हैं। उसके माता-पिता ही फ़िर उसके सच्चे माता-पिता बन जाते हैं, उसकें चाचा-ताऊ ही फ़िर उसके चाचा-ताऊ बन जाते हैं। उसकी चाची-तायी ही फ़िर उसकी चाची-ताई बन जाती हैं। उसके मामी-मामा ही तब उसके मामी-मामा बना जाते हैं, उसके बहिन-बहिनोई ही तब उसके भी बहिन-बहिनोई बन जाते हैं। फ़िर उस का तन-मन-धन आदि भी सब उसका तन-मन-धन बन जाता है, उसी के संग से उत्पन्न हुए बालक भी उस की तरह उसके भी अपने बच्चे बन जाते हैं, उसके भाई-बहिनें भी फ़िर उसके ही भाई-बहिनें बन जाते हैं। ऐसे ही पति को भी इस पत्नी से अपने ही ढंग का एक सुख मिलता है। और वह एक ऐसा उसका समर्पण भरा सुख होता है कि जिसमें खोया हुआ पति

उसको फ़िर केवल अपने घर की ही रानी नहीं वरन् अपने हृदय सदन की भी रानी समझता है। वह फ़िर उसकी बहिनों को भी अपनी बहिनें और उसके भाईयों को भी फ़िर अपने भाई ही समझता है; वह उसके माता-पिता को भी फ़िर अपना ही माता-पिता समझ कर उनका मान-सम्मान करता है। ये दोनों तब परस्पर इतने एक-दूसरे के समीप आ जाते हैं कि फ़िर उनकी एक अपनी नई दुनिया-अपना एक नया संसार-अपना ही एक नया घर बस जाता है। तब उन दोनों को एक-दूसरे का दुःख-सुख फ़िर अपना ही दुःख-सुख लगता है। वह पति फ़िर जो कमाता है, वह उस घर के लिये कमाता है, और पत्नी उसके कमाए हुए उस धन-धान्य से अपने उस घर-परिवार को सुखमय यशस्वी बनाती है।

पहले पत्नी को अपने से प्यार होता है, अतः वह अपने खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने आदि का पर्याप्त ध्यान रखती है। फ़िर आगे चलकर पति के प्रति उसके हृदय में जब प्यार उमड़ता है तो फ़िर वह उसके खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने का विशेष ध्यान रखती है। फ़िर दोनों मिलकर अपने माता-पिता के प्रति श्रद्धा-प्रेम उमड़ने से उनके विशेष खान-पान, रहन-सहन आदि का ध्यान रखते हैं, उनके गर्म पानी आदि का ध्यानं रखते हैं। फ़िर बच्चों के खान-पान आदि का विशेष ध्यान देते हैं। यह घर भी कैसा स्वर्ग है। पत्नी को समस्या हुई तो वह पति को सुना कर हल्की हो गई, पति का मन उदास हुआ तो कुछ पत्नी को सुना कर वह हल्का हो गया। दोनों ही कुछ उदास वा निराश-हताश हुए

तो अनुभवी माँ-बापों के समीप आकर बैठकर उन्हें सब सुनाकर वे हल्के हो लेते हैं। माँ-बाप उदास हुए तो वे अपने प्रिय बहु-बेटों के मध्य में आ बैठते हैं या कभी बच्चों के साथ हँस-खेल कर वे अपने दुःख को भुला बैठते हैं। बच्चे उदास हुए तो वे अपने माँ-बाप वा दादा-दादी के पास बैठ अपनी बातें सुना कर स्नेह-लाड वा प्यार-दुलार पाकर हल्के हो लेते हैं। और उन्हें अपनी राम कहानी सुना कर वे हल्के हो लेते हैं।

घर है, प्यास लगी तो पानी पी लिया, भूख लगी तो भोजन कर लिया, दूध को मन हुआ तो दूध पी लिया, दही वा लस्सी को मन हुआ तो दही-लस्सी ले ली, छाछ-पनीर आदि को जी चाहा तो छाछ-पनीर ले लिया। सर्दी लगी तो कम्बल-रजाई ओढ़ ली, गर्मी लगी तो चद्दर ओढ़ ली वा पंखा चला लिया, मन हुआ तो फ़ल खा लिये, मन हुआ तो जूस आदि पी लिया।

घर में बच्चे हुए तो उन्हें खेल-खिलोने ला दिये, फ़िर वे युवक हो गए, तो उनके कुलीन सुपुत्रियों से विवाह कर दिये, और वे भी तब सुख-सौभाग्य से परस्पर एक-दूसरे के संग रहने सहने लगे ? और जी-जान से मिल-जुल कर गृहस्थ को स्वर्ग बनाने लगे।

वेद एक दूसरे मन्त्र में कहता है -

यत्र सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायांः।
अश्लोणा अङ्गैरहुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान् ॥

अथर्व०६.१२०.३॥

(यत्र स्वर्गे सुहार्दः सुकृतः स्वायाः तन्वः रोगं विहाय अश्लोणाः अङ्गैः अह्रुताः मदन्ति, तत्र पितरौ च पुत्रान् पश्येम) जिस गृहाश्रम रूप स्वर्गाश्रम में सुन्दर हृदयों वाले, सुन्दर कर्मों वाले, अपने सूक्ष्म और स्थूल शरीरों की आधि-व्याधियों से अपने मन और तन के रोगों से रहित हुए-हुए, अश्लोणाः=लङ्गड़े-लूले पन से रहित, तथा अङ्ग-प्रत्यङ्गों से अविकृत, अर्थात्, अङ्गवैकल्य से रहित हुए-हुए सदा हर्षित-प्रहर्षित रहते हैं=मुदित-प्रमुदित रहते हैं। ऐसे गृहाश्रम में हम पितरों अर्थात् अपने माता-पिताओं को जहाँ देखें, वहाँ उस घर में हम पुत्र-पुत्रियों को भी देखें।

जिस घर में सुन्दर उत्तम पवित्र हृदयों वाले लोग रहते हैं, सब सदा सुकर्मों को करने में लगे रहते हैं। शरीर भी जहाँ सब के नीरोग और स्वस्थ होते हैं, सशक्त होते हैं। घर में न कोई लूला होता है और न लङ्गड़ा होता है, तथा न ही किसी के अङ्ग-प्रत्यङ्ग विकृत होते हैं। तन से ही नहीं वरन् मन-बुद्धि से भी जो सदा ठीक-ठाक बने रहते हैं। ऐसा घर सदा सुखी रहता है-सर्वदा प्रसन्न रहता है। फ़िर जिस घर में जहाँ आने वाली पीढ़ी में पुत्र-पुत्रियाँ रहती हैं, वहाँ उसमें दादी-दादा आदि के रूप में बड़-बूढ़े भी रहते हैं। बच्चे जहाँ अपने माता-पिताओं से प्यार प्राप्त करते हुए बहुत कुछ सीखते हैं, वहाँ वे दादी-दादा से भी बहुत लाड-प्यार प्राप्त करते हुए बहुत कुछ सीखते हैं। दम्पती 'जहाँ उनके माता-पिता विद्यमान रहते हैं, वहाँ बहुत कुछ निश्चिन्त से रहते हैं। बड़े-बूढ़े भी वहाँ बहुत सी घर-परिवार की समस्याओं को ऐसे ही हल कर लेते हैं। माता-पिता जहाँ अपने पुत्र और पुत्र-बधुओं से बहुत कुछ पाते हैं वहाँ वे कई बार

अपने पोते-दोहतों से और भी अधिक सुख शान्ति और आनन्द अनुभव करते हैं। कभी-कभी तो वे बच्चे ही उनकी निराशाओं में आशाओं और उत्साहों का संचार कर देते हैं। कई बार तो घर में बच्चों से कुछ वस्तु टूट-फूट जाने से वे अपनी दादी वा दादा की गोद में घुस जाने से अपने माता-पिता के कोप वा मार से अपने को बचा लेते हैं। और कभी-कभी बड़े-बूढ़े भी इन नन्हें-मुन्ने बच्चों के कारण अपने बहु-बेटों के कोप-क्रोध से बच जाते हैं। कहीं-कहीं तो घरों में इन माता-पिताओं के विद्यमान रहने का मुख्य-मुख्य कारण ही ये छोटे-छोटे प्यारे-प्यारे बच्चे होते हैं। अतः यह आने वाली पीढ़ी और जाने वाली पीढ़ी, ये दोनों ही पीढ़ियाँ घर की शोभा हैं, स्वर्गमय घर की निशानी हैं।

घर-परिवार में ये सब व्यक्ति बने रहते हैं तो ये सब परस्पर एक-दूसरे के सहारे होते हैं। घर में ज़रा सा भी किसी को शारीरिक वा मानसिक कष्ट होता है तो झट सब उसको पूछने लगते हैं। एक झट थर्मामीटर लाता है, उसके शरीर का तापमान देखता है, दूसरा उसके आराम करने के लिये बिस्तर बिछाता है। बुखार आदि अधिक होता है तो वह जहाँ स्वयं उसके लिये सतर्क-सावधान हो जाता है, वहाँ रोगी के प्रति घर में अन्य सब सदस्यों भाई-बहिन, माता-पिता आदि को भी सजग कर देता है। फ़िर कोई उसके लिये दवा लाता है, कोई गोदुग्ध लाता है, कोई गुरुकुल की देसी चाय लाता है, कोई मौसमी, सन्तरे वा अँगूर लाता है, कोई जल, दुग्ध वा शहद लाकर उसके साथ उसको औषध देता है, कोई उसको साबुदाने की खीर बनाकर खिलाता है, कोई दलिया वा सूजी की खीर बनाकर देता

है, ताकि उसको यह सब कुछ सहज पच सके और उसका शरीर जहाँ औषधि से नीरोग हो, वहाँ इन सब पदार्थों से उसमें कुछ शक्ति का भी संचार हो। बुखार आदि पुनः देखने पर यदि वह रोगी कुछ ठीक वा नार्मल होता है, तो यह सबको बताकर सान्त्वना देता है। यदि उसको कुछ ठीक-स्वस्थ पाता है तो झट यह हँसता हुआ सबको कहता है - 'आज भैय्या ठीक है वा आज पिता जी ठीक हैं। अब माता जी ठीक हैं। आज टेबल पर आकर वे हमारे साथ भोजन करेंगे। आज कितना अच्छा लगेगा। आज इनको घुमाने-फ़िराने भी हम ले चलेंगे इत्यादि।' ऐसे समय-समय पर दिया हुआ लाड-प्यार वा स्नेह-सम्मान कुछ ऐसा होता है कि उस रोगी के दुःख के दिन भी तब सहज व्यतीत हो जाते हैं, और उसको कुछ पता भी नहीं लग पाता। ऐसे ही किसी पर मानस दुःख के आजाने पर कोई उसके आँसू पोंछता है, कोई उसको धीर बन्धाता है, कोई उसकी पीठ पर प्यार से हाथ फ़ेरता है, कोई उसके लिये भगवान् से प्रार्थना करता है, कोई उसको प्यार से समझाता है आदि-आदि। इन सब मधुर प्रिय व्यवहारों के कारण घर-परिवार सचमुच बहुत अच्छा लगता है - स्वर्ग सा लगता है। अस्वस्थ व्यक्ति जब यहाँ पर सबका स्नेह-प्यार-लाड-मान पाता है तो उसमें पुनः नवजीवन का संचार हो जाता है। इन दुःख के दिनों के स्नेह-प्यार, मान-समान का कुछ ऐसा सुन्दर परिणाम निकलता है कि समय आने पर वह अपने इन सब परिवार के सदस्यों पर और भी प्रेम-प्यार में भर कर व्यवहार करता है। यों भी कृतज्ञतावश जब वह अपने इन माँ-बापों वा दादी-दादाओं को देखता है तो उनके सम्मुख श्रद्धा

से इसका मस्तक झुक जाता है, जब यह अपने भाई-बहिनों को देखता है तो यह सोचता है कि - 'न जाने मैं इनके लिये क्या कर डालूँ?' पत्नी एवं बच्चों को देखता है तो प्यार में भरकर सोचता है कि - 'यदि मैं अपने को तिल-तिल करके गला भी दूँ और इन नारी एवं प्यारे बच्चों को कुछ बना सकूँ तो भी मुझे बेहद प्रसन्नता होगी ...।' जब घर में इस प्रकार यह सब प्रेम-प्यार प्रवाहित हो, सब एक-दूसरे के प्रति स्नेह पाश से बंधे हुए हों, सब एक दूसरे को देख-देख कर वा खिला-पिला कर फूले न समाते हों, सब एक दूसरे का जी-जान से सहयोग करते हों, तो फ़िर यही सुख का धाम होता है और यही धरती का स्वर्ग कहलाता है।

हे प्रभो! तू (नः स्वर्गं लोकम् अभिनयासि) सचमुच हमें ऐसे स्वर्ग लोक-सुख-शान्तिमंय दिव्य दर्शनीय लोक में ले जाना चाहता है जहाँ वृद्धावस्था में दादी-दादा परस्पर एक-दूसरे का संहारा बनें, एक-दूसरे के काम आवें, एकदूसरे को समझें-समझाएँ, वहाँ परस्पर मिलकर अपना स्वाध्याय-सत्सङ्ग, भजन-पूजन करके अपना परलोक सुधारें और वर्तमान् लोक में कमाने, कमाकर लाने और लाकर भोजन आदि बनाने तथा कपड़े-लत्ते आदि सिलवाने से सर्वथा निश्चिन्त रहते हैं। क्योंकि अब इस सब कार्य के लिये अर्थात् कमाने, लाने और बनाने एवं सबको खिलाने-पिलाने, पहनाने-ओढ़ाने और पालने-पोसने के प्रति उनके पुत्र और पुत्र-बधुएँ सचिन्त और सजग हो गए हैं। कितना सुन्दर है यह गृहस्थ रूप स्वर्गाश्रम कि जहाँ बच्चों को यह पता ही नहीं कि दूध-घी-मक्खन-पनीर-दही आदि पदार्थ कहाँ से आते हैं, गेहूँ,

चना, मक्की, बाजरा, चावल, आटा, दाल, शाक-पात, फ़ल-फूल कहाँ से आते हैं, कपड़े-लत्ते, किताबें-कापियाँ, पैन-पैनसिलें, जूता-जुराब, फ़ीस आदि ये सब कुछ कहाँ से और कैसे आता है, इनकी चिन्ता उनको नहीं वरन् उनके माँ-बाप को है। उनको तो बस केवल खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना, खेलना-कूदना, बैठना-उठना, हँसना-बोलना और अपना जीवन बनाना है। आगे उनका क्या होगा ? कैसे होगा ? क्यों होगा ? इसका तो उन विचारों को कुछ पता ही नहीं है, उसकी तो इनको कोई चिन्ता ही नहीं हैं। क्योंकि माँ-बाप ने जो यह सब चिन्ता अपने सिर पर ओढ़ रखी है। उन्हें यह सब कुछ करते हुए अपने ही ढंग का एक अनोखा सुख मिलता है।

पत्नी भी घर में अपने ही ढंग से निश्चिन्त है। कहाँ से धन आता है, कितने पुरुषार्थ से आता है, कितना समय लगा कर आता है, ईन्टें उठा-उठा कर मज़दूरी कर-कर के पति घर में धन लाता है या ईन्ट पर ईन्ट धर कर बिल्डिंग बनाने से यह धन लाता है, कपड़ा सी के यह धन लाता है वा कपड़ा बेच के यह घर में धन लाता है, ठेले पर शाक-भाजी, फ़ल-फूल, चने-मूंगफली बेच कर यह घर धन लाता है, वा कारपेन्ट्री से यह धन लाता है वा यह पढ़ा कर यह धन कमाता है वा रिक्शा, स्कूटर, बस चला कर अर्थात् ड्राईवरी से यह धन कमाता है वा कण्डक्टरी से यह धन लाता है, चिकित्सा करने से यह धन कमाता है या कुछ और कार्य करने से यह धन कमाता है, यह सब कुछ इस पति ने अपने लिये सब छोड़ा है। पर जैसे पति ने उसको कमाने से निश्चिन्त कर रखा है, वैसे ही

इस नारी ने भी उसको यह सबकुछ बनाने से- इस सबको सुव्यवस्थित रूप देकर सबको खिलाने-पिलाने, पहनाने-ओढ़ाने आदि से निश्चिन्त कर रखा है। सचमुच इस स्वर्गाश्रम में से एक भी व्यक्ति हिलता है तो उसका अभाव सबको शरीर में चक्षुं के अभाव के समान खटकता है। कमाने वाला न रहे तो सारा घर हिल जाता है - झट फ़िर वह स्वर्ग से नरक में बदल जाता है। कमाने वाला हो, पर बनाने वाली - सब में उस सब वैभव को सुव्यवस्थित कर सबको बना कर खिलाने-पिंलाने वाली न हो, तो भी यह घर वीरान हो जाता है। चार दिन के लिये यह बेचारी मायके चली जाए तो सब बच्चे भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि - 'प्रभुवर! माँ को प्रेरणा दो, कि वह जल्दी ही घर आ जाए, नहीं तो अंपना तो बुरा हाल हो जायेगा। यह पति भी कुम्हला जाता है और प्रभु से वह अभ्यर्थना करता है और देवी जी को पत्र भी लिखता है कि- "जितना जल्दी हो सके तू घर आ जा...।" इसी तरह अगर इस घर का कोई बालक-बालिका=बेंटा-बेटी कहीं बाहर पढ़ने-लिखने वा कोई कोर्स करने के लिये बाहर चली जाती है वा कोई बच्चा मामा-चाचा, ताया, भुआ,. मौसी के घर चला जाता है तो फ़िर कोई भी वस्तु घर में ऐसी बनती है जो उन बच्चों को अच्छी लगती है, तो वह माँ-बाप के गले से नीचे नहीं उतरती। खाते-खाते बारम्बार उन बच्चों को वे याद करते हुए कहते हैं कि - यह शाक-भाजी, यह खीर-हलुवा, वा ये बर्फ़ी-पेड़ें तो बेटी वा बेटे को बहुत अच्छे लगते हैं, यह फ़ल, यह गन्ना, यह खीरा-यह ककड़ी तो उन्हें बहुत अच्छी लगती है। हाय कितना अच्छा होता

अगर वे इस समय यहाँ होते और इन्हें खाते तो हम उन्हें देख-देखकर निहाल होते। घर की यह मधुर प्रिय स्मृतियाँ ही तो स्वर्ग की प्यारी प्यारी निशानियाँ होती हैं।

एक बहू घर में आई जिसे अपने प्रति बहुत लगाव था। शाक-भाजी-खीर आदि जो भी कुछ घर में बनता, वह अपने लिये पहले अलग रख देती, यह सोच कर, कि शायद बाद में बचे या नहीं। पर बहुत जल्दी ही मैंने देखा कि उसके हृदय में अपने पति के प्रति ऐसा कुछ लगाव उत्पन्न हो गया कि फ़िर वह अपने को भूल कर उनका ऐसा ध्यान रखती हुई उनके लिये वह द्रव्य रखने लगी। फ़िर जहाँ बच्चे उत्पन्न हुए तो उनका प्यार बच्चों के प्रति ऐसा सरका कि तब वह अपना तो कहना क्या, पति को भी भूल कर उन बच्चों का विशेष ध्यान कर उनके लिये विशेष पदार्थ सम्भालने लगी। पति को भी उसके इस व्यवहार से बड़ी खुशी हुई। नारी के प्रथम त्याग को देखकर पति फूला नहीं समाया; पर बच्चों के लिये जब उसने पति को भी लाँग दिया, तो भी पति कुम्हलाया नहीं वरन् और भी अधिक प्रसन्न हो गया। एक घर में एक विद्वान् अतिथि आया जिसको अमरूद बहुत अच्छे लगते थे। नारी ने उन बहुत सुन्दर-सुन्दर अमरूदों को बच्चों से छिपा कर रख दिया, इसलिये कि उस पूज्य अतिथि को खिलाने हैं। विद्वान् अतिथि को जब यह पता लगा तो वे बोले - 'बेटी वा बहिन! यह तुमने क्यों किया। बच्चे खाते तो हमको भी बड़ी प्रसन्नता होती।' तब वह बोली - 'बच्चे तो यह सब रोज़ खाते ही रहते हैं और हम उनको यह सब कुछ खिलाते ही रहते हैं। पर आज आप खायेंगे

इन अमरूदों को तो अपने को कितना अच्छा लगेगा!' एक घर में एक नारी ने जब यह देखा कि - 'माता-पिता वृद्ध हो गए हैं, उनके लिये हलकी सुपाच्य वस्तु ही ठीक रहती है, तो सर्वप्रथम वह उनका विचार करके कुछ बनाने को सोचती है। इसके उपरान्त वह सोचती है कि बच्चों को जो खाने में प्रिय लगता है।' मैंने पूछा कि - 'यह वस्तु तो तुमने माता-पिता की अनुकूलता के लिये बनाई, और यह वस्तु बच्चों को अच्छी लगती है, इसलिये बनाई, पर तुम दोनों ने अपने लिये क्या बनाया?' तो वह बोली - 'अब इस घर में बूढ़ों-बच्चों की प्रधानता है। हम तो गौण हैं। पेट ठीक न हुआ तो माता-पिता की लौकी तोरी टीण्डों वा मूंग की दाल से रोटी खाली, और पेट ठीक हुआ तो बच्चों की राजमाँ वा उड़द भिण्डी आदि में से कुछ ले लिया।' एक नारी (सास-श्वसुर रूप में वर्तमान) माता-पिता को प्रथम सामने रख कर शाक-दाल बनाती है और उनके लिये दो भरी बाल्टी गर्म पानी रखकर सबसे कहती है कि - 'पूज्य पिता जी के गर्म पानी को हाथ न लगाना, ताकि वे खूब खुलकर नहा सकें। हम तो चाहे जैसे भी पानी से नहा लें, कुछ अन्तर नहीं पड़ता, पर उनके लिये तो गर्म पानी जरूरी है।' उसके इन दिव्य व्यवहारों को देख-देख कर उसके श्वसुर कहते हैं कि - 'उसके लिये मेरे हृदय की गहराईयों से आशीर्वाद निकलता है कि - 'भगवन्! तू इस पर सदा सुख-सौभाग्यों की, सुख-शान्ति एवं आनन्दों की खूब वर्षा करते रहना...।' पत्नी के इन दिव्य. व्यवहारों को देख-देख कर पति स्वयं भी कष्ट सहता है पर अपने माता-पिता को सुख देने में वह भी जी-जान से

सहयोग करता है। माता-पिता के अपने माता-पिता के प्रति इन दिव्य व्यवहारों को देख-देख कर फ़िर पोते-पोतियाँ भी उनको सिर आँखों पर उठाए रखने में फूले नहीं समाते। यह सब कुछ देख-देख कर वृद्ध माता-पिता भी भगवान् का रोम-रोम से धन्यवाद करते हैं और उसके भक्ति भरे गीतों को गा-गा कर भीतर से भी उस प्राण प्रिय प्रभु का प्यार पाते हैं।

प्रभुवर! कितना प्यारा यह स्वर्ग लोक है - कितना सुन्दर दर्शनीय यह स्वर्गाश्रम रूप गृहस्थाश्रम है, जिसमें कोई ऐसी रस्सी नहीं कि जिसने इन सबको बान्ध रखा हो और वह इन सबको एक-दूसरे से पृथक् नहीं होने देती हो! पर फ़िर भी न जाने एक अनुपम स्नेह-सहानुभूति, लाड-प्यार, और परस्पर के आकर्षण का एक ऐसा बन्धन है, जो इन चर्म चक्षुओं से न दीखता हुआ भी इन सबको परस्पर कस के ऐसा बान्धे हुए है, कि ज़िसके कारण पत्नी १५-२० दिन के लिये मायके जाती है तो भी वह दिन गिनती रहती है कि - 'कब ये दिन व्यतीत हों और मैं अपने प्राणप्रिय पति के पास पहुँचूँ, अपने प्यारे बच्चों के पास पहुँचूँ, केवल यह ही दिन नहीं गिनती, पति भी दिन ग़िनता रहता है कि आज १५ दिन बीत गए, आज १६ दिन बीत गए। बच्चे भी दिन गिनते रहते हैं और कहते रहते हैं - 'पिता जी! माँ जी कब आयेगी ?' पिता कहता है - 'बेटा! बस अब वह दो चार दिन में आने ही वाली है।' बेटी कहती है - 'पिताजी! माँ के बिना घर बहुत खाली-खाली सा लगता है।' सास ससुर को तो बहु के बिना घर अत्यन्त वीरान सा ही लगता है। तभी तो वे बेटे को कहते हैं कि - 'जाओ बेटा! अब तो बहू को ले

आओ, बहुत दिन हो गए हैं उसको मायके गए हुए।' बच्चे कहीं चले जाएँ तो माँ-बाप को उनकी प्रिय वस्तुओं के बनने पर उनको वे वस्तुएँ खानी ही अच्छी नहीं लगतीं, दादी-दादा को तो यों ही बच्चों के बिना घर फ़ीका-फ़ीका लगता है। माँ-बाप कहीं बाहर जाते हैं तो सोचते हैं कि - 'बच्चों के लिये क्या ले जायें?' और वे घर आते हैं और बच्चे उनके थैले-झोले-बैग आदि टटोलते हैं कि - 'देखें माता-पिता हमारे लिये क्या लाये हैं ?' सचमुच जब वे कुछ लाए हुए होतें हैं, और बच्चे झोले देखते हैं, तो उनको यह सब कुछ बहुत अच्छा लगता है। पर अगर किसी कारणवश वे कुछ नहीं ला पाते, तो उनको अपने पर ग्लानि आती है कि - 'हाय कुछ भी बच्चों के लिये हम ला नहीं पाए।' बच्चे जब झोले में कुछ खाने आदि की वस्तु पाकर नाचते-कूदते हुए खाते-पीते हैं और दादी-दादा को बताते हैं कि - 'माता-पिता हमारे लिये यह वस्तु लाए हैं, तो वे भी तब बड़े खुश हो जाते हैं। बड़े-बूढ़े भी कभी तीर्थ यात्रा पर चले जाते हैं या किसी आश्रम में उत्सव वा शिविर के लिये चले जाते हैं तो घर में यह चर्चा शुरू हो जाती है कि शिविर तो समाप्त हो गया है, पता नहीं माता जी वा पिता जी अभी तक आए नहीं! भगवान् करे उनका स्वास्थ्य ठीक हो। बेटी-बेटे पूछते हैं - 'पिता जी! दादी जी कब आयेंगी, दादा जी कब आयेंगे...?' सब जगह मनुष्य निमन्त्रण आने पर जाता है, पर घर एक ऐसा स्वर्ग है - एक ऐसा देखने और रहने योग्य लोक है, जहाँ कि मनुष्य बिना निमन्त्रण के स्वयं ही भागा चला आता

है। प्रेम का यह दिव्य बन्धन ही तो है जो सबको सहज ही ऐसे बान्धें रहता है कि वे परस्पर एक दूसरे से अलग हो ही नहीं पाते। और अगर किसी उद्देश्य से उनमें कहीं किन्हीं को बाहर जाना भी पड़ता है, तो बहुत जल्दी ही प्रेम पाश में बन्धे हुए वे सब एक दूसरे की ओर खिचे चले आते हैं। यह स्वर्ग भी कैसा निराला है, जहाँ निश्छल बच्चों को छोड़ कर कोई अपने लिये सोचता ही नहीं। वैसे भी तो यह बहु कुछ कसर नहीं रखती, पर कड़वाचौथ के व्रत पर तो यह अपनी इस पूज्य स्थिर माँ अर्थात् सास की झोली को बादाम-छुआरे-काजू आदि पदार्थों एवं रुपयों से भर देती है, ताकि उसको यह पूज्या माता एवं पूज्य पिता जी लम्बी आयु तक जीवित रह कर उसे सदा सुहागिन रहने का आशीर्वाद देते रहें ...।' हमारे माता-पिता को क्या ज़रूरत है, कपड़े-लत्ते वा अनुकूल शाक-भाजी आदि की, या औषध आदि की, यह सब कुछ यह बहु ही अपने पति को बताती है और इन सब वस्तुओं के लाने की प्रेरणा भी देती है। बेटा जब अपनी पत्नी से माता-पिता की आवश्यकताओं को सुनता है तो अपने माता-पिता के प्रति ऐसी सचिन्त देवी को पाकर वह तब बड़ा ही खुश होता है, और निश्चिन्त भी रहता है। इसका बोध उसको उस समय और भी अच्छी तरह हों जाता है जब वह किसी बात के लिये अपनी पत्नी को डाँटता वा कोसता है और जब उसके माता-पिता उस को समझाते हैं कि - 'बेटा! बहु का दोष नहीं है। वह तो साक्षात् देवी है। जो कुछ वह कर रही है, वह तो सच कहें तो कोई कर ही नहीं सकता।

यदि वह सेवा-सत्कार और श्रद्धा-प्यार की साक्षात् मूर्ति घर में न होती तो हम तो न जाने कब के इस घर से ही नहीं वरन् इस संसार से ही विदा हो लेते। अतः बेटा! ऐसी देवी को मन से भी तू कभी मत कोसा कर।' उसको अपने कपड़े-लत्तों आदि का कुछ ध्यान हो वा न हो, पर उसको अपने पति के कपड़े-लत्तों आदि की फ़िकर हैं, उसको बच्चों के कपड़े-लत्तों का फ़िकर है, उनकी फ़ीस, किताब कापियों और पैन-पैन्सलों की फ़िकर है, तभी तो पग-पग पर उसकी जबान पर इन सब चीजों का ज़िकर है। कभी माँ कह देती है कि - 'बहु! तेरे विवाह की वर्ष गाँठ है। तू अपने लिये यह साड़ी वा वह सूट वा अमुक वस्तु ले ले' या अपने बेटे को कहती है कि - 'बहु को यह ला दो...' आदि-आदि। तो वह झट यह कहती है - 'माँ जी! अपना ट्रंक तो साड़ियों और सूटों से भरा पड़ा है। आपने मुझे इतना कुछ ले के दिया है कि जितना कोई एक माँ अपनी कई बहुओं के लिए भी नहीं ले पाती ...।' 'हाँ, माँ! सर्दी आ रही है। आपके पास कोई गर्म सूट नहीं है, आप एक सूट ले लें तो ठीक रहेगा। पति देव! देखो, अपने पास कितने कपड़े रखे हैं। ला दो न, माँ जी के लिये एक गर्म सूट!' सचमुच यह गृहस्थ तब स्वर्ग बन जाता है, यह गृहस्थ तब दर्शनीय लोक बन जाता है, जब उसके सदस्य अपने-अपने लिये नहीं सोचते वरन् वे दूसरों के लिये सोचते हैं। ऐसे ही लोग देवता होते हैं, और उन्हीं देवताओं से ही यह घर स्वर्ग बनता है।

भगवन्! सचमुच तू हमें एक ऐसे स्वर्ग लोक में - एक

ऐसे सुख-शांति को प्राप्त कराने वाले दर्शनीय लोक में ले चलता है, जहाँ कि हमें पता ही नहीं लगता और हमारे जीवन के अनेकों वर्ष व्यतीत हो जाते हैं। यों इसमें जहाँ सुख आते हैं, वहाँ दुःख भी आते हैं, रोग-शोक भी आते हैं, हानि-नुकसान भी झेलने होते हैं, पर वे भी वहाँ ऐसे व्यतीत हो जाते हैं कि पता नहीं लगता कि वे दुःख-कष्ट अभाव आए भी थे या नहीं...।

प्रभुवर! तू हमें जिस स्वर्गलोक-स्वर्गाश्रम-सुख के धाम में भेजता है, वहाँ हम (जायया पुत्रैः सह सं स्याम) पुत्र-पुत्रियों को ज़न्म देने वाली जाया-पत्नी और उससे उत्पन्न हुए पुत्र-पुत्रियों के साथ मिल कर रहें, उनके साथ एक होकर रहें।

जिस घर में जाया=पुत्र-पुत्रियों को जन्म देने वाली, और उनको जन्म देने से भी पूर्व उनके लिये अपने हृदय में ऊँची और दिव्य भावनाओं को जन्म देने वाली जाया-दिव्य नारी आ जाए तो फ़िर पतियों को चाहिये कि वे उनसे मिल-जुल कर प्रेम से रहें, एक-दूसरे के साथ एक होकर रहें, दो तन-बदन एक जान होकर रहें। अर्थात् उनके हृदयों में उठने वाली भावनायें एक हों और उनको उन दोनों के द्वारा सतत खाद-पानी मिलता रहे। जैसे कि वेद में 'आपः' शब्द का अर्थ नारी होता है। [आपो वै योषा (ब्राह्मण)]। इस 'आपः' शब्द का अर्थ जल भी होता है। अतः 'आपः' वह नारी होती है जो घर-परिवार में लगी हुई किसी भी तरह की आग को बुझाने में सक्षम होती है। जैसे यह आग कहीं लग जाती है तो यह केवल दरवाजों, खिड़कियों,

खाटों, टाटों, कपड़े-लत्तों आदि-आदि को जलाती है तो भी झट लोग या तो फ़ायर ब्रिगेड़ को फ़ोन करते हैं या फ़िर स्वयं बालटियाँ भर-भर पानी की, उस अग्नि पर डाल-डालकर उसको बुझाते हैं। पर ये अग्नियाँ तो जल आदि ते बुझाई जा सकती हैं, पर इसके अतिरिक्त भी घर-परिवारों में कुछ काम, क्रोध, लोभ, मोंह, अहँकार और ईर्ष्या-द्वेष आदि की भी कुछ ऐसी अग्नियाँ भड़क जाती हैं, जो किं लोगों के तन-बदन वा तन-मन को ऐसी फूँक के रख देती हैं - ऐसी जलाकर ख़ाक कर देती हैं [वा इनके कारण आत्म-हत्याएँ तक हो जाती हैं] तो ऐसी अग्नियों को बुझाने में तो न ये पानी की भरी-भरी बालटियाँ समर्थ हैं और न ही यह फ़ायर ब्रिगेड़। तो फ़िर इन अग्नियों को कौन बुझायेगा ? अब जब इन अग्नियों को कोई बुझाने वाला-शान्त करने वाला ही नहीं होता तो फ़िर वह घर तो नरक ही नहीं अपितु महा नरक ही बन जायेगा। ऐसे घर में यदि सौभाग्य से कोई 'आपः' वा सरस्वती जैसी दिव्य नारियाँ हुयीं तो वे बड़ी आसानी से इन अग्नियों को बुझा सकेंगी। और तब वह घर फ़िर उन अग्नियों के बुझने पर तुरन्त ही-सद्य ही शान्त हो जाने से नाश-महानाश से बच जायेगा। जैसे एक घर-परिवार में वधू के रूप में 'आपः' नारी का आगमन हुआ। विवाहोपरान्त पति पत्नी के समीप आया। वह तब उसके इतना समीप आना चाहता था कि जिससे फ़िर और अधिक समीप हुआ ही नहीं जा सकता था। उसके हृदय में उसके प्रति कुछ ऐसा प्यार उमड़ रहा था कि वह क्षण-प्रति क्षण उसको उसके निकट-सन्निकट ही लाता जा रहा था। 'आपः' नारी विदुषी नारी थी। वह जल की सी

शान्त प्रकृति की थी। यों जानो कि वह जल की सी प्यारी धार थी। आज के शब्दों में वह फ़ायर ब्रिगेड थी-अग्नि [-कामाग्नि] शामक शक्ति थी। उसने फ़ायर-ब्रिगड की-अग्नि शामक शान्तप्रकृति की प्रथम जल सम शान्त शब्दों की 'फुवार' पति पर छोड़ते हुए कहा - 'पतिदेव! आप क्या चाहते हैं ? आप की क्या इच्छा है ?' ऐसे समय में प्रश्न करने वाले और प्रश्न सुनकर उत्तर देने वाले भी कोई विरले ही होते हैं। पर 'आपः' नारी का कुछ प्रभाव ही ऐसा था कि उसका अधोगामी प्रवाह ऊर्ध्व गामी हो गया [जैसे कि फ़ायर ब्रिगेड की प्रथम जल की फुवार से अग्नि की लपट कुछ शान्त सी हो जाती है-] और वह सोचने लगा कि - 'इसको मैं क्या उत्तर दूँ ?' बड़ी सोच समझ कर इसने उत्तर दिया, और कहा कि - 'देवी! जो प्रायः संसार के लोगों की इच्छा होती है, वही मेरी भी है।'

फ़ायर ब्रिगेड - आपः नारी की दूसरी फुवार थी - 'पति देव! आपका उद्देश्य क्या है ?' क्योंकि - 'उद्देश्यमन्तरेण मन्दोपि न प्रवर्तते।' - उद्देश्य के बिना तो कोई मन्द प्राणी अर्थात् छोटी सी चीन्टी भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होती। उसको अन्न की अपेक्षा होती है तभी वह उसकी खोज में निकलती है।' यह पूछने पर पुनः उसका माथा ठनका, अर्थात् उसकी शक्ति का अधःप्रवाह ऊर्ध्वगामी हुआ और वह सोचने लगा कि - 'अब इस प्रश्न का मैं क्या उत्तर दूँ ?' तो बहुत सोचने पर उसने उत्तर दिया कि - 'देवी! हम गृहस्थ हैं, और गृहस्थ की शोभा सन्तान से है। अतः मैं भी चाहता हूँ कि हमारे यहाँ भी सन्तान

हो।' इस पर पत्नी बोली कि - 'पतिदेव! यह तो बहुत अच्छा विचार है। पर एक बात मैं और पूछती हूँ। वह यह कि - आप कैसी सन्तान चाहते हैं ?' तब फ़िर वह सोचने लगा कि - 'क्या उत्तर दूँ ?' फ़िर वह धीरे से बोला कि - 'देवी! कोई अच्छी सन्तान होनी चाहिये कि जिससे हमारे कुल का नाम हो, आदि-आदि।' फ़िर नारी ने बड़े स्नेह और शान्ति से पूछा कि - 'पति देव! क्या आपको मालूम है कि वह अच्छी सन्तान कैसे उत्पन्न होती है ?' पति बोला - 'देवी! अपने को तो यह सब कुछ पता ही नहीं है। अब यह तो आप ही बताओ कि अच्छी सन्तान कैसे उत्पन्न होती है ?' पत्नी बोली - 'पति देव! अच्छी सन्तान उत्पन्न होती है - अच्छे विचारों से, अच्छे आहारों और अच्छे व्यवहारों से, आदि-आदि।' पति बोला - 'वह सब कैसे होगा ?' पत्नी बोली - 'पतिदेव ! अब रात दस बज गए हैं, आओ, रात्रि के मन्त्रों का पाठ करें, [यज्जाग्रतो ...तन्मे मनः शिवसङ्कलपमस्तु...] प्रातः काल यज्ञोपरान्त प्रभु से अच्छी सन्तान के लिये प्रार्थना करेंगे और वैसे ही खान-पान, रहन-सहन और आचार-विचारों को भी बनायेंगे। फ़िर प्रभु की कृपा हुई तो तेरी-मेरी इच्छानुसार वे हमें अच्छी सन्तान भी दे ही देंगे ...।'

प्रातःकाल सन्ध्योपरान्त और यज्ञोपरान्त जब उस 'आपः' नारी ने पहिले महात्मा विदुर जी के शब्दों में और फ़िर वेद के शब्दों में प्रभु से प्रार्थना की तो उसको सुन-सुन कर उसके पति की तो आँखों से श्रद्धा और प्रेम के आँसू ही टपकते रहे।

क्योंकि उस देवी की प्रार्थना बड़ी ऊँची भावनाओं से भरी हुई थी। वह प्रार्थना यह थी -

मा नः कुले वैरकृत्कश्चिदस्तु राजामात्यो मा परस्वापहारी।
मित्रद्रोही नैकृतिको अनृतो वा पूर्वाशी वा पितृदेवातिथिभ्यः॥ विदुर नीतिः ४.३३॥

मम पुत्राः शत्रुहणा दुहिता मे विराट् ।
उताहमस्मि सञ्जया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः
॥ अथर्व० १०.१५९.३॥

हे प्रभो! हमारे कुल में कोई वैरीं सन्तान न उत्पन्न हो। क्योंकि कुल में यदि कोई एक भी वैरी सन्तान उत्पन्न हो जाती है तो फ़िर वह दुर्योधन की तरह सारे कुल के विनाश का ही कारण बन जाती है, या औरंगज़ेब ने जैसे अपने पिता कों कारागार में डाल दिया और दारा जैसे धर्मात्मा बड़े भाई को मौत के घाट उतार दिया, तथा बहिन ने जब यह कहा कि - 'भैय्या!' जिस अब्बा जान ने हमें इतने प्यार से पाला-पोसा है, उसके साथ हमें ऐसा व्यवहार कभी नहीं करना चाहिये, तो उसने उसको भी जेल में डाल दिया। अपनी आने वाली पीढ़ी को वह इसलिये राजनीति में निपुण नहीं बना पाया कि कहीं वह भी उसको जेल में डाल कर उससे गद्दी हथिया न ले, आदि-आदि। इन दुष्परिणामों को देख-सुन कर ही तो विदुर जी के शब्दों में नारी भगवान् से प्रार्थना करती है कि - 'हे प्रभुवर! हमारे कुल में कोई वैरी सन्तान न पैदा हो।'

'राजामात्यो मा परस्वापहारी' - यदि हमारे घर में कोई

सन्तान भी उत्पन्न हो जो आगे चलकर राजा या अमात्य-मन्त्री आदि-आदि बने तो वह नाजायज़ रूप से दूसरों के धनों को ला-ला कर अपने घर में डालने वाली न हो। अर्थात् वह राजा वा राज्याधिकारी बनकर दूसरों का धन हर-हर कर अपना घर भरने वाली न हो। वह पवित्र पुरुषार्थ की कमाई को ही घर में लाने वाली हो।

हमारे घर-परिवार में कोई मित्रों से द्रोह करने वाली वा मित्रों को धोखा देने वाली सन्तान न उत्पन्न हो। घटिया काम करने वाली वा निठल्ली बैठने वाली पुरुषार्थहीन सन्तान वा दूसरों का तिरस्कार करने वाली सन्तान भी हमारे यहाँ न उत्पन्न हो। झूठ बोलने वाली तथा वृद्ध माता-पिता-आचार्य और अतिथि आदि से पूर्व खाने वाली सन्तान भी हमारे यहाँ न उत्पन्न हो। हमारें यहाँ तो प्रभुवर! बहुत उत्तम वीर सन्तान उत्पन्न हो। वेद के शब्दों में यदि हमारे यहाँ पुत्र उत्पन्न हो और वह ब्राह्मण के रूप में उत्पन्न हो तो वह काम क्रोध लोभ मोह आदि शत्रुओं को पैरों तले रोन्ध कर वैदिक धर्म का प्रचार करने वाली सन्तान हो; क्षत्रिय रूप में उत्पन्न हो तो मैदान जंग में शत्रुओं के दान्त खट्टे करने वाली संन्तान उत्पन्न हो, वैश्य के रूप में उत्पन्न हो तो आटे में नमक के बराबर लाभ लेकर संसार को अच्छी से अच्छी, साफ़ से साफ़, सुथरी से सुथरी, शुद्ध से शुद्ध वस्तुएँ प्रदान करने वाली हो। और अगर शूद्र हो तो वह निराभिमान होकर तीनों वर्णों की सेवा करके अपने जीवन का निर्वाह करने वाली हो। यदि मेरी दुहिता-पुत्री उत्पन्न हो तो वह सूर्य के

समान तेजस्विनी हो, ताकि दुष्टों की आँखें चुन्धिया जाएँ। ऐसी उत्तम पवित्र सन्तानों के माध्यम से मैं सर्वत्र विजयी होऊँ। और पति में मेरी उत्तम कीर्ति हो, उसके हृदय में मेरा यश हो ...।

'आपः' नारी यह प्रार्थना कर ही रही थी कि पति की आँखों में आँसू ढुलक आए। वह सोचने लगा कि - 'सचमुच हमको सन्तान से पूर्व अपने आहारों को सुधारना चाहिये, फ़िर अपने विचारों और व्यवहारों को सुधारना चाहिये, फ़िर ऊँची एवं उत्तम भावनाओं को अपने हृदयों में उद्बुद्ध कर तदनन्तर अपने घरों में सन्तान उत्पन्न करने की कामना करनीं चाहिये...।

(जायया पुत्रैः सह सं. स्याम) ऐसी उत्तम आदर्श जाया-पत्नीं और उससे उत्पन्न प्रिय पुत्र-पुत्रियों के साथ हम (सं-स्याम)) मिलकर रहें-एक होकर रहें। अर्थात् हम सब के परस्पर हृदय एक हों - दिल एक हों, विचारने-अर्थात सोचने-समझने का तौर-तरीका एक हो। अर्थात् हम सब दिलो-दिमाग़ से एक हों - हृदय औंर मस्तिष्क से परस्पर मिले हुए हों - परस्पर जुड़े हुए हों, वास्तव में जब घर में सन्तान उत्पन्न करने से पूर्व जो जाया-नारी अपने भीतर मस्तिष्क में ऊँचे विचार और अपने हृदय में ऊँची भावनाओं को उत्पन्न करने का प्रयास करेगी, और पति भी इस विषय में उसका पूरा-पूरा साथ देगा, तो फ़िर निःसन्देह उसकी सन्तान भी तब ऊँचे विचारों एवं ऊँची भावनाओं वाली होगी।

जाया-जननी जहाँ ऐसी हो, जनक भी जहाँ ऐसे हों और उनके उत्तम पवित्र विचारों के परिणामस्वरूप सन्तानें पुत्र-पुत्रियाँ

भी जहाँ दिव्य विचारों और दिव्य भावनाओं वाली हों, और वे सदा अपने माता-पिता, दादी-दादा आदि का मान-सम्मान, सेवा-सत्कार करते हों, उनकी पवित्र भावनाओं का सदा आदर करते हों - सदा ध्यान रखते हों, उनको अपनी योग्यताओं और ऊँचे चरित्र से तृप्त करते हों, ऐसी जाया-पत्नी और उससे उत्पन्न ऐसे प्रिय पुत्र-पुत्रियों के साथ हम मिलकर रहें - हम एक होकर रहें। हम उनके साथ-साथ खायें-पियें, उनके साथ उठें-बैठें, बात-चीत करें। पुत्र-पुत्रियाँ भी सहज ही उनसे अपनी बात कहें, और माता-पिता आदि भी सहज ही उनकी बात सुनें और उनको अपने विचारों और भावनाओं का बोध करायें [जैसे एक व्यक्ति ने अपनी इकलौती पुत्री का विवाह किया। सर्विस छोटी सी थी। पहली बार बेटी को मिलने गया। पत्नी ने बेटी को कुछ फ़ल-फूल-मिठाई भेजी। पिता ने उसके साथ बेटी को एक सौ एक रुपये भी दिये। बहुत कहने पर भी उस बेटी ने ११ रु० लेकर ९० रु० वापिस कर दिये। पिता बोला-'बेटी! मैं बड़े प्यार से यह दे रहा हूँ...।' बेटी बोली...'पिता जी! मैंने बड़े ही प्यार से ११ रु० ले लिये हैं। मेरा कोई भाई नहीं है, जो आगे चलकर आपको कमाकर खिलायेगा। मैं अपने माँ-बाप को उजाड़ कर अपने को नहीं बसाना चाहती। मेरा पति जिसके हाथ में आपने मेरा हाथ दिया है, वह मुझे कभी भी कमी नहीं रहने देता। वह तो मेरी मुट्ठी भी भरता है, मेरी झोली भी भरता है, मेरा पर्स भी भरता है। पिता जी! यह सब प्रभु कृपा एवं आपके आशीर्वाद का ही तो फ़ल है। मेरे माता-पिता बसे रहें,

उनकी आवश्यक-आवश्यकताएं पूर्ण होती रहें, ताकि मैं सदा प्रसन्न होकर अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर आपके यश को बढ़ाती रहूँ...।' माता-पिता से सदा बच्चों को लाड-प्यार और रक्षण-संरक्षण तथा सूझ-बूझ मिलती रहे। बच्चों से भी माता-पिता को स्नेह-सम्मान-विश्वास और यश मिलता रहे। घर में पति-पत्नी के लिये सोचे, वह उसकी सुख-सुविधाओं का ध्यान करे और जहाँ तक सम्भव हो वह उसे ऐसे रखे कि जिससे उसको अपने पितृ कुल से भी बढ़कर वहाँ ऐसा-स्नेह-सम्मान मिले कि वह अपने पितृकुल को भी भूल जाए। तथा इस घर में आकर और रह कर वह अपना अहोभाग्य माने। पत्नी भी पति के लिये सोचे, उसकी सुख-सुविधाओं का हृदय से सदा ध्यान रखे, उस के लिये वह सदा सजग और सावधान रहे। हम इस जाया के साथ रहें-इन पुत्र-पुत्रियों को जन्म देने वाली नारी के साथ रहें। इसने हमारे बीज को रक्त से सींचा। जब तक बालक गर्भ में रहा तब तक प्रभु की व्यवस्था से नाभि के माध्यम से यह उसे सतत रक्त देती रही। स्वयं यह कमजोर होती रही और सन्तान को यह सशक्त करती रही। फ़िर जब वह बालक कुछ देखने, सुनने, बोलने, स्पर्श करने, रोने और रो के अपनी व्यथा प्रकट करने योग्य बन गया, और दुग्ध पीने आदि के योग्य बन गया, तथा बाहर की अग्नि, वायु, तेज और जल आदि के प्रभावों को सहन करने के योग्य हो गया तो फ़िर उस बच्चे को इसने जन्म दिया। फ़िर जब वह बच्चा रोया, क्योंकि नाड़ी छेदन से रक्त से शक्ति मिलने का जो प्रवाह बन्द हुआ। तभी तो उसे भूख लगी

तभी तो वह बच्चा रोया, तब इस जाया ने, - इस जननी ने - इस माँ ने उसके मुख से अपनी अमृत रूप दुग्ध की उस सतत धारा से जब उसकी जाठराग्नि में आहुति दी, तब वह बालक तृप्त हो गया और चैन की नीन्द सो गया। ऐसी जाया से हम मिलकर रहें, ऐसी नारी के हम साथ-साथ रहें, उसके साथ हम प्रेम पूर्वक रहें। क्योंकि इसने हमारे बीजों को इस धरती माता के समान अपने में स्थान दिया, फ़िर उनको खाद-पानी दिया, अमृत तुल्य दुग्ध देकर तृप्त किया, आदि-आदि।

आयुर्वेद के ग्रन्थ 'भावप्रकाश' में लिखा है कि माँ जब बच्चे को देखती है वा स्पर्श करती है वा बालक उसको देखता है वा छूता है तो उसका दुग्ध स्रवित होने लगता है। इसमें उसका आन्तरिक हृदय का प्यार ही कारण है जिसके कारण उसका यह अद्वितीय अमृत रूप दुग्ध झरने लगता है। भगवान् के आनन्द रस की कामना से जब भक्त ने भगवान् को पुकारा तो उस मन्त्र में भी इन्हीं माताओं का उदाहरण दिया गया है-

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।

उशतीरिव मातरः ।।ऋ० १०.९.२।।

हे आपः। हे प्यारे प्रभो! जो आपका शिवतम-अत्यन्त कल्याणकारी आनन्दरूप रस है उसका हमें इस मानव जन्म में ऐसे सेवन कराओ कि जैसे अपने बच्चों का कल्याण चाहने वाली माताएँ उन्हें अपने अमृत रूप दुग्ध का सेवन-पान कराती हैं।

तो ऐसी जाया जिसने इन प्यारे-प्यारे बच्चों को जन्म देने से पूर्व अपने में उत्तम-उत्तम भावनाओं को जन्म दिया। और

इतना ही नहीं, यह जब हमारे इस घर में आई थी तो वेद के अनुसार इसने मुझे बताया था कि - 'पति देव! मैं जब तुम्हारे घर में आने के लिये तेरे रथ-यान-गाड़ी में सवार हुई थी तो उससे पूर्व मैं मनोरथ-मन रूप रथ पर सवार हुई थी। और उस मेरे रथ पर जो छत थी वह बुद्धि वा विचार की थी। अर्थात् मैं जब तुम्हारे यहाँ आई, तो मैं दिलो-दिमाग़ से यहाँ आई-मैं मनो-मस्तिष्क से यहाँ आई-मैं हृदय और बुद्धि से यहाँ आई। पति देव! उस समय मेरे उस मन रूपी रथ को खींचने वाले जो घोड़े थे, वे शुभ्र थे - श्वेत थे - स्वच्छ-निर्मल थे। अर्थात् मेरे जो इन्द्रिय रूप अश्व थे - घोड़े थे वे बड़े ही शुभ्र थे-दूध के धुले हुए थे-सब प्रकार से शुद्ध-पवित्र=साफ़-सुथरे थे। अर्थात् मैंने तब तक इन नेत्रों से सबको पिता, भ्राता और भाई-बहिनों के बेटों आदियों को पुत्रों के रूप में ही निहारा था-सोचा-विचारा और समझा था। पहली बार जीवन में मैं ने आपको अपने पति के रूप मे देखा और सोचा-समझा और विचारा है आदि-आदि।' अर्थात् यह जाया-यह नारी मुझे ऐसी शुभ्र-पवित्र मिली है जैसे कि गुरुकुल काङ्गड़ी का एक मनो-मस्तिष्क=दिलो-दिमाग़-अर्थात् मन रूप रथ-बुद्धि रूप छत और शुभ्र-पवित्र इन्द्रिय रूप अश्वों वाला व्यक्ति एक नारी को पति के रूप में मिला था। वह कितना शुभ्र था-कितना पवित्र था यह मैं आपको बतलाता हूँ। उसकी सगाई अर्थात् वाग्दान अपने ही नगर में हुआ था। एक दिन उसको एक सज्जन मिला। उसने उसको बधाई दी और पूछा - 'तेरी सगाई-वाग्दान कहाँ हुआ है, किसके साथ हुआ है ...?'

तो सहसा ही जिस कन्या से उसकी सगाई हुई थी, वह भी उसी ओर को आ रही थी, तो उसने उसको सहसा देख लिया। तब वह ब्रह्मचारी उस सज्जन को कहता है - 'चाचा जी! अंकल जी! वह जा रही है वह बहिन जी कि जिससे मेरी सगाई हुई है।' तब वह सज्जन बोला - 'धन्य हो तेरी हार्दिक शुभ्रता-पवित्रता वा सहजता जो अब भी तेरे हृदय में सहज वह दृष्टि बनाए हुए है जो कि विवाह के पूर्व एक ब्रह्मचारी में बनी रहनी चाहिये।

सो ऐसी पवित्र जाया को पाकर भला उसके साथ मिल कर हम कैसे नहीं रहेंगे। फ़िर इन दिव्य भावों से भरी हुई इस दिव्य नारी से समुत्पन्न इन प्यारे-प्यारे पुत्र-पुत्रियों के साथ मिल कर भी भला हम कैसे नहीं रहेंगे ? अर्थात् अवश्य रहेंगे।

पत्नी रूप में महर्षि पाणिनि के अनुसार "पत्युर्नु यज्ञ-संयोगे" यह पत्नी कहलाती ही तब है जबकि यह मुझ पति के सब यज्ञमय कर्मों में मेरे साथ जुड़ी रहती है। अर्थात् यह मेरे सभी यज्ञमय उत्तम कर्मों में सदा मेरा साथ देती है, मुझे सहयोग देती है। मैं जब अपने ब्रह्मयज्ञ में अपने प्रियतम प्रभु को गाता हूँ तो तब यह भी मेरे साथ बैठकर उसको गाती है। मैं उसका गुण गान करता हूँ तो यह भी मेरे साथ-साथ उसका गुणगान करती है। मैं उस अपने प्राणप्रिय प्रभु का ध्यान करता हूँ, उसके ध्यान के लिये आसन विशेष में बैठ कर अपनी आँख, कान, मुख को मून्दता हूँ, तो यह भी आसन विशेष में बैठकर अपनी आँख, कान, मुख, मून्दती है। मैं ब्रह्मयज्ञ में

वेदपाठ करता हूँ तो यह भी वेदपाठ करती है। मैं वेद पढ़ता हूँ, उस पर मनन-चिन्तन करके कुछ बोलता हूँ तो तब यह भी बड़े प्यार से उसको सुनती है। [और जब कभी यह उस ब्रह्म-वेद को पढ़ती है और उस पर मनन-चिन्तन करके बोलती है, तो मैं भी उसे बड़े प्यार से सुनता हूँ। मैं देवयज्ञ-करता हूँ तो यह भी फ़िर मेरे साथ बैठकर देवयज्ञ-अग्निहोत्र करती है। मैं घी की आहुति देता हूँ तो यह सामग्री की आहुति देती है। इतना ही नहीं, यह तो मुझ से आगे बढ़ कर उस जगह की सफ़ाई भी करती है। झाड़ू-पोचा मारती है। वह बड़े प्रेम से आसन बिछाती है। यह यज्ञ कुण्ड रखती है, पात्र मांजती है, जल लाती है, समिधा-सामग्री और घृत आदि की व्यवस्था करती है।

यह मुझ से भी चार पग आगे बढ़कर यह सब कुछ करती है ...] मैं 'अग्नये स्वाहा' यह कहकर जब घी की आहुति बड़ी श्रद्धा से देता हूँ तो यह भी यह कह कर बड़े प्रेम से सामग्री की आहुति देती है। मैं 'इदन्न मम' कहता हूँ तो यह भी मेरे साथ यही कहती है। मैं स्विष्टकृत् आहुति भात की देता हूँ तो यह भी देती है। मैं बलिवैश्व देव यज्ञ की आहुतियाँ घी से देता हूँ तो यह भात की उन दस आहुतियों को बड़ी श्रद्धा से देती है। मैं पितृयज्ञ में अपने माता-पिता, दादी-दादा आदि का श्राद्ध और तर्पण करना चाहता हूँ, तो यह उस यज्ञ में भी मेरा पूरा-पूरा सहयोग देती है। मैं अपने माता-पिता आदि के चरण छूकर उनका हर रोज अभिवादन करता हूँ तो यह मुझ से भी

आगे बढ़कर बड़ी श्रद्धा से अभिवादन करती है। मैं उनको कुछ खिलाना-पिलाना चाहता हूँ तो यह उनके लिये उन्हीं के अनुकूल भोजन एवं पेय बनाना चाहती है, सूप वा दूध चाय आदि बनाना चाहती है और उनको मुझसे भी बढ़कर श्रद्धा-प्रेम से खिलाना-पिलाना चाहती है। मैं उनके लिये पहनने-ओढ़ने के लिये कुछ कपड़े-लत्ते लाना चाहता हूँ तो यह भी बड़ी श्रद्धा से उनके लिये बनवाकर उन्हें पहनाना-ओढ़ाना चाहती है। यह उनके बैठने-उठने और विश्राम करने वा सोने के लिये आसन बिस्तर आदि बिछाना चाहती है, गरज यह कि हर तरह से पग-पग पर यह मेरा पूरा-पूरा साथ देती है। फ़िर भला मैं इनके साथ प्रेम से क्यों नहीं रहना चाहूँगा! मैं कभी-कबार किसी साधु-सन्त-संन्यासी विद्वान् ज्ञानी ध्यानी को साथ लाकर उसका आतिथ्य करना चाहता हूँ, उसको बड़ी श्रद्धा और प्यार से अपने यहाँ ठहराना चाहता हूँ, उसकी आव-भगत कर उससे कुछ ज्ञान चर्चा करना चाहता हूँ, तो यह मुझसे बढ़कर उसकी आव-भगत करती है, और मेरे साथ बैठ कर उसके ज्ञान-विज्ञान का पूर्ण लाभ उठाना चाहती है। मैं दीन अनाथों की कुछ सहायता-सहयोग करना चाहता हूँ तो यह उसके लिये पहले से मेरी आय से कुछ भाग पृथक् रख देती है, और जब मैं देना चाहता हूँ तो यह फूली न समाती हुई झट निकाल कर स्वयं या मेरे द्वारा वह धन-अन्न-वस्त्र आदि प्रदान कर देती है। ऐसी प्रिय पत्नी जो सभी श्रेष्ठ यज्ञमय कर्मों में मेरे संग दिल से सहयोग करने को खड़ी रहती है - दिल से तैय्यार रहती है, ऐसी प्यारी पत्नी के साथ भला मैं कैसे नहीं

रहना चाहूँगा ? अवश्य ही रहूँगा। उसके साथ ही नहीं, उससे उत्पन्न प्यारे-प्यारे पुत्र-पुत्रियों के साथ भी मैं बड़े प्यार से अपने जीवन के दिन व्यतीत करूँगा! इतना ही नहीं, कमा-कमा कर जब मैं लाऊँगा और यह बनायेगी। फ़िर हम दोनों उन नन्हें-मुन्नों को जब हँसते-खेलते और खाते-पीते, पहनते-ओढ़ते देखेंगे, तो हमें अपने ढँग से एक ऐसा स्वर्गमय सुख मिलेगा कि जिसको एक गृहस्थ ही अनुभव कर सकता है। खायेंगे-पीयेंगे और पहनेंगे-ओढ़ेंगे बच्चे, पर उन्हें देख-देख कर फूले नहीं समायेंगे हम। सोना-चांदी, वस्त्र-आभूषण पहनेगी पत्नी, और फूला नहीं समायेगा पति। पत्नी के प्यार से बनाए हुए खाद्य एवं पेय पदार्थों को खायेगा-पीयेगा उसका पति, उसके धुले और प्रेस किये हुए वस्त्रों को पहनेगा उसका पति और उसे देख-देखकर रीझेगी इसकी हृदय में बसने वाली पत्नी ...। यही तो है सुख का धाम स्वर्गाश्रम-गृहस्थाश्रम। जग में आकर जिसने इसका वेदानुसार सही उपयोग किया, उसको वेद बड़ा सौभाग्याशाली समझता है और इसी का आशीर्वाद भी ये सब बड़े-बूढ़े इन दम्पतियों को देते हैं ... 'सौभाग्यवती भव देवि!' 'सौभाग्यवान् भव देव!' 'सौभाग्यवान् भव देव!' ऋषि के शब्दों में ''ओम् सौभाग्यमस्तु-ओम् शुभं भवतु-ओम् स्वस्ति स्वस्ति स्वस्ति।''

ऐसे ही नारी की तरह मैं भी इसकी हर यथोचित इच्छा वा आवश्यकता को पूर्ण करता हूँ। मैं इनकी भावनाओं की दिल से क़दर करता हूँ और उनको अपने घर में लागू करने का भरसक प्रयास करता हूँ। आते ही पहली रात्रि मैंने बड़े प्यार से इस

देवी से पूछा - 'देवी! तू मुझ से क्या चाहती है। आज तू जो कुछ भी मुझसे माँगेगी, मैं जी-जान से तुमको देने का प्रयास करूँगा।' पति कुल में अण्डे-माँस-मदिरा आदि का प्रयोग होता था, पर यह वाग्दान के उपरान्त जब उसको ज्ञात हुआ था तो उसको बहुत कष्ट हुआ था। पर आज पति को अपने अनुकूल देखकर उसने सर्वप्रथम अपनी माँग यही रखी-अपनी पहली इच्छा यही रखी कि - 'पति देव! मैं हृदय से चाहती हूँ कि मैं अपने इस घर को - अपने इस गृहस्थाश्रम को निरामिश बनाऊँ।' उसके पति ने एक ही बार में इस बात को सहर्ष स्वीकार किया और उसे कह दिया - 'देवी! ऐसा ही होगा।' और तब से इन पदार्थों का खाना-पीना तो दूर रहा, घर में इनका लाना भी बन्द हो गया। ऐसे ही एक नारी ने अपनी प्रथम बातचीत में जब यह कहा कि - 'मुझे सिग्रेट बिल्कुल भी नहीं पसन्द है।' तो झट वह व्यक्ति बोला कि -'यह लो! मैने सिग्रेट फ़ैंक दी और अभी के लिये ही नहीं वरन् सदा-सदा के लिये सिग्रेट पीनी छोड़ दी - त्याग दी।'' ऐसे ही एक नारी बोली - ''मैं अच्छी पिक्चर देखना पसन्द करती हूँ, पर दूसरी पिक्चरों में मैं अपने मूल्यवान् समय की बर्बादी समझती हूँ।' इस पर उसका पति बोला - 'देवी! मैं तो पिक्चर हाल में घुसता ही नहीं।' इस पर नारी बोली - 'पति देव! यह तो और भी अच्छी बात है।' एक नारी बोली कि - 'मैं यज्ञ आदि शुभ कर्मों को बहुत पसन्द करती हूँ।' पति बोला - 'देवी! वह तो मैं नित्य करता ही हूँ। इतना ही नहीं, अवसर मिलने पर औरों को भी मैं यज्ञ करा देता हूँ।'

ऐसी स्थिति में फ़िर भला वह जाया-पत्नी भी भला क्यों मेरे साथ रहना पसन्द नहीं करेगी ? वह अपने बच्चों को बढ़िया-बढ़िया स्वादिष्ट पदार्थ बना-बना कर, खिला-खिला कर, लाड-प्यार करती है। और मैं भी नित्य उनके लिये कुछ न कुछ खेल-खिलौने वा फ़ल-फूल ला-ला कर उनको लाड-प्यार देता हूँ। इस तरह हम दोनों परस्पर एक दूसरे को बहुत भाते हैं - प्रिय लगते हैं। हमारे परस्पर के कार्य भी एक दूसरे को अच्छे लगते हैं। हम एक दूसरे के साथ मिल कर किसी समस्या पर विचार-विमर्श कर उसको सुलझाना चाहते हैं। यों कभी-कभी इस विषय में हमारा मतभेद भी हो जाता है, पर हमारा मतभेद होकर भी मनभेद नहीं होता। क्योंकि हम दोनों ही अपने दिलो-दिमाग़ से इस घर-परिवार को हर दृष्टि से ऊपर उठाना और आगे बढ़ाना चाहते हैं। इसलिये तब भी हम परस्पर एक दूसरे के साथ मिल कर रहना - मिल-जुल कर बात करना और सदा हँसते-बसते हुए रहना पसन्द करते हैं।

घर में बच्चे हमको अच्छे लगते हैं, बच्चों को हम भी अच्छे लगते हैं। हमारी उम्र के वा इससे भी बड़े-बूढ़े जब हमारे घर में आते हैं, तो जैसे हम उनका अभिवादन करते हैं, हम उन्हें सिर-आँखों पर बिठाते हैं- उनका मान-सम्मान करते हैं, वैसे हीं ये भी बड़ी श्रद्धा से उनका अभिवादन करते हैं, उन्हें मान-सम्मान देते हैं। उन्हें जल-पान वा भोजन आदि कराने को कहें तो ये उन्हें बड़ी श्रद्धा से यह सब करा देते हैं, उन्हें उद्दिष्ट स्थान पर रिक्शा-स्कूटर वा गाड़ी पर छोड़ने को कहें, तो ये

उन्हें छोड़ आते हैं वा उद्दिष्ट रथ बस वा ट्रेन पर बिठा आते हैं। और जिनको लेने जाने को कहें, तो ये उन्हें यथा समय बस स्टेण्ड वा स्टेशन से ले भी आते हैं। हम कहते हैं कि हमारे भाई साहब आए हैं, भाभी जी आयी हैं, तो वे झट ताया जी आए हैं, तायी जी आई हैं, वा चाचा जी आए हैं, वा चाची जी आई हैं, ऐसे खुशी के मारे फूले न समाते हुए उनकी ओर भाग पड़ते हैं, वे झट उनके चरण छूते हैं, उन्हें प्रणाम करते हैं, उनके हाथों से सामान लेकर खुशी के मारे घर में दौड़े चले आते हैं। हमारी बहनें और जीजा ज़ी आते हैं या नारी के घर से उनके भाई वा भाभी आते हैं, तो ये बच्चे झट अपने स्थानों से कूदते-फ़ाँदते हुए भुआ जी आई हैं, फ़ूफ़ा जी आए हैं; मामी जी, मामा जी आए हैं वा मौसी जी और मौसा जी आए हैं, यह कहते हुए उनका अभिवादन कर उनके सामान को हाथों में थामे हुए भीतर उनको लेकर दौड़े चले आते हैं। बच्चों का यह उत्साह जब हमारे ये बन्धु-बान्धव देखते हैं तो वे सब तब हम से भी बढ़कर उन बच्चों को लाड-प्यार करने हैं। वे जब उनसे बातचीत करते हैं तो वे बहुत ही प्रसन्न होते हैं। जब कुल का आने वाला सुन्दर भविष्य उनको इन बच्चों में दीखता है तो जहाँ ये बन्धु-बान्धव खिल जाते हैं, वहाँ उनसे स्नेह-लाड और आशीर्वाद आदि पाकर तब इन बच्चों के भी चेहरे खिल जाते हैं। तभी तो ये उनके पास बैठना चाहते हैं, उनके पास सोना चाहते हैं, उनके साथ खाना-पीना चाहते हैं वा अपने माता-पिता आदि से मिलकर उन सबको बढ़िया से बढ़िया खिलाना-पिलाना

और पहनाना-ओढ़ाना चाहते हैं। तब उन बच्चों का फ़िर अपने व्यक्तिगत कार्यों में मन ही नहीं लगता, तो भी अन्तः प्रेरणा वा माता-पिता की प्रेरणा से वे बेचारे मन मार कर भी अपनी पढ़ाई में लग जाते हैं। बड़े-बूढ़े, ये सब बन्धु-बान्धव भी अपने स्नेह-लाड पर कन्ट्रोल कर भोजन आदि के समय में उनको स्नेह विशेष देकर उनसे सम्मान विशेष पा लेते हैं। फ़िर कभी जब वे सब जाते हैं तो ये बच्चे यों अनुभव करते हैं कि जैसे हमारा कुछ खो गया हो, और जाने के बाद वे लोग सोचते हैं कि जाते-जाते भी जैसे हमारे कोई प्रिय हम से रह गये हों। ऐसी मधुर प्रिय स्मृतियाँ जहाँ बन्धु-बान्धवों के विषय में बनी रहती हैं और समय-समय पर उनकी चर्चा से जहाँ घर में सबके हृदयों को राहत मिलती रहती हो, उसी घर में ये पति-पत्नी, ये भाई-बहिन, ये माता-पिता और ये बेटे-बेटियाँ परस्पर प्रेम के अदृश्य सूत्र में ऐसे पिरोए रहते हैं कि चाहते हुए भी उन्हें कोई पृथक् नहीं कर सकता। उनका अनूठा प्यार भी घर में एक देखने वाली वस्तु होती है। तब हम इकट्ठे बैठते हैं, परस्पर मिल कर बातचीत करते हैं, परस्पर विचार-विमर्श करते हैं। ऐसे में यदि घर में किसी एक को चोट लगती है तो अन्य सब दौड़ पड़ते हैं। घर का एक व्यक्ति उसका रुई से रक्त-खून पोंछता है, तो दूसरा दौड़कर टिंचर वा स्पिरिट वा डिटोल लाता है, तीसरा पट्टी के लिये कपड़ा लाता है, चौथा उसको सहारा देकर यथोचित स्थान पर ले जाकर बिठाता है वा लिटाता है। पाँचवाँ व्यक्ति बड़े कोमल हाथ से उसका पैर पकड़ कर स्पिरिट लगाता हुआ

फूँक मारता है ताकि जलन ज़्यादा न हो। तब घर में कुछ ऐसा लगता है कि जैसे चोट किसी एक को नहीं वरन् सब को लगी हुई हो, जैसे कि पीड़ा-दर्द किसी एक को नहीं, वरन् सबको हो रहा हो, जैसे कि ज्वर किसी एक को नहीं सबको हो गया हो, जैसे कि नीन्द किसी एक की नहीं सबकी हराम हो रही हो। तब घर के अन्दर एक ऐसा प्रेम का सा वातावरण बन जाता है कि जिससे यह प्रतीत होता है कि जैसे सब एक दूसरे में पिरोए हुए हों, सब एक दूसरे से अत्यन्त जुड़े हुए से हों। यही बात है कि उनमें से कोई एक भी यदि अलग होता है वा मरता है तो दूसरे रोते हैं, दूसरे तड़प जाते हैं। उस समय सब ऐसे दुःखी हो जाते हैं कि जैसे वह ही नहीं, वरन् ये सब मर गए हों। ऐसे ही घर में एक कुम्हला जाए तो सभी कुम्हला जाते हैं, एक फ़ेल हो ज़ाता है तो सब ऐसे दुःखी हो जाते हैं कि जैसे सभी फ़ेल हो गए हों। घर में एक किसी कार्य में सफ़ल हो गया हो या पास हो गया हो या उसको पुरस्कार मिल ग़या हो, तो फ़िर सबको देखकर ऐसा लगता है कि जैसे सभी सफ़ल हो गए हों, या सभी पास हो गए हों, या सभी को मानो पुरस्कार मिल गया हो। विवाह एक का होता है और वह तो बड़े सुन्दर वस्त्र धारण करता ही है, पर जब मैं सबको नए-नए वस्त्र पहनते हुए देखता हूँ, सबको अपने आपको वस्त्राभूषणों से अलंकृत करते हुए देखता हूँ, तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे सबका ही आज विवाह हो रहा हो। इस सबका कारण है कि इन सबको मिलकर रहने, मिलकर खाने, मिलकर एक दूसरे की समस्याओं को हल

करने में आनन्द आता है, और तब ये सब यही समझते हैं कि जैसे ये सब अपनी ही समस्या का समाधान कर रहे हों।

घर में यदि बेटों के दोस्त-पुत्रों के मित्र आते हैं वा बेटियों-पुत्रियों की सखी-सहेलियाँ आती हैं, तो इनके माता-पिता वा बड़े-बूढ़े ऐसे खुश होते हैं - ऐसे प्रसन्न होते हैं, ऐसे उनके आगे-पीछे दौड़ते हैं - ऐसे उनको प्यार से कुछ खाने-पीने को पूछते हैं कि जैसे उन्हीं के अपने ही कोई घनिष्ट दोस्त-मित्र आए हुए हों, जैसे कि उनकी ही कोई अभिन्न हृदय सखी-सहेलियाँ बहुत दिनों के उपरान्त पधारी हुई हों। ऐसे ही यदि घर में इन बच्चों के माँ-बापों के, अर्थात् इनके माता-पिताओं की कोई सखी सहेलियाँ वा दोस्त-मित्र आए हुए हों, तो ये पुत्रियाँ और पुत्र उनको ऐसे मान-सम्मान देते हैं - ऐसे उनका अभिवादन करते हैं, ऐसे उनकी श्रद्धा-भक्ति से आव-भगत करते हैं, जैसे कि इनके अपने सगे माँ-बाप आए हुए हों, तभी तो ये सब बड़े प्रेम पूर्वक साथ-साथ रहते हैं, साथ-साथ खाते-पीते हैं, साथ-साथ सब मिल-जुलकर अपने घर-परिवार के कार्यों को करते हैं, साथ-साथ उठते-बैठते हैं, साथ-साथ सन्ध्या-उपासना और यज्ञ-याग तथा ध्यान-भजन-कीर्तन करते हैं। जैसे सैनिक मार्च करते हुए पग से पग मिलाते हैं, वैसे ये सब गाते हुए स्वर से स्वर मिलाते हैं। इन सबका परस्पर का प्यार अनोखा है, इन सबका परस्पर एक दूसरे की सुख-सुविधा का ध्यान अनोखा है, इन सबका परस्पर एक दूसरे का हित सोचना-विचारना और करना अनोखा है, और वह सब इतना सहज है कि इसके लिये इन्हें कुछ विशेष

आयास-प्रयास नहीं करना पड़ता। वह समय आने पर अपने आप होने लगता है। क्योंकि इन सब में जो भीतर का हार्दिक लगाव है वह ही इन सबसे वह सब कुछ करवाता रहता है जो कि इन्हें करना चाहिये। इनके दिलों में एक दूसरे के लिये बढ़ी जगह होती है। इसलिये ये अनेकों एक छोटे से स्थान में भी घुल-मिलकर रह लेते हैं, मिल-जुलकर खा-पी लेते हैं, लाड-प्यार से मिल-जुलकर सोकर रात व्यतीत कर लेते हैं। इसलिये वेद के शब्दों में ये सब दिल से प्रार्थना करते हैं कि - "[वयम्] सं स्याम" हम, परस्पर ऐसे मिलकर रहें कि जिससे भले ही हम अपने बाह्य तन से पृथक्-पृथक प्रतीत हों, पर भीतर मनसे हम सब एक हों, ऐसे जैसे कि खरबूजा बाहर से पृथक्-पृथक् फ़ाँकों के रूप में पृथक्-पृथक् दीखता है, पर काटने पर भीतर से-अन्दर से वे फ़ाँकें एक होती हैं। वे सन्तरे की तरह बाहर से एक और भीतर से पृथक्-पृथक् नहीं दिखाई देना चाहते हैं। एक घर में एक व्यक्ति बाहर से बहुत अच्छे अमरूद लाया, सब ने खाए। अन्त में दो अमरूद रह गए। पिता ने पत्नी से कहा - 'बेटी को अच्छे लगते हैं, अतः अमरूद उसे खिला देना।'

माँ ने बेटी को कहा - 'बेटी अमरूद खा लो।' बेटी बोली - पिता जी को ये बहुत अच्छे लगते हैं, - 'अतः माँ जी! अमरूद उनको खिला देना।' माँ बोली - 'बेटी! वे नहीं खायेंगे, क्योंकि अमरूद तुमको बहुत अच्छे लगते हैं, अतः अमरूद तुम खाओगी और वे तब बहुत प्रसन्न होंगे।' बेटी बोली - 'अच्छा माँ जी! आपको भी तो अमरूद बहुत अच्छे लगते हैं। आप ही खा लो।' माँ बोली - 'नहीं बेटी! आपको

और आपके पिता जी को जो चीज़ बहुत अच्छी लगे और वह दो दाने मात्र हों तो मेरे लिये उनका खाना तो और भी कठिन है।' सब अमरूद खाए गए पर परस्पर के प्यार में वे दो अमरूद दो तीन दिन तक पड़े ही रहे। अन्त में बेटी को खिला देने पर माता-पिता को बड़ी प्रसन्नता हुई और बेटी को भी अपने माँ-बाप के प्यार भरे हार्दिक व्यवहार पर प्रसन्नता हुई। यों हर एक व्यक्ति घर में समझता है कि 'अमरूद उसने खाए तो मानो मैंने खाए, और मैं इससे तृप्त भी हो गया।' यही वह प्यार है जो परस्पर सबको सदा ऐसे पिरोए हुए रखता है जिसके कारण उनमें से कोई एक भी पृथक् होता है तो अन्य सब तड़पते हैं। क्योंकि वे तो हर रोज दिल से प्रभु से यह प्रार्थना करते हैं कि - 'वयं सं स्याम' हम परस्पर ऐसे मिल कर रहें कि हम दूध-पानी सम एक हो जाएँ।

कानपुर में एक देवी ने बहुत बढ़िया अमरूद टोकरी में सम्भाल के पृथक् रख दिये और उनको ढक भी दिया। घर में एक विद्वान् वा सन्त घर में आया हुआ था। उसने उससे पूछा - 'देवी! ऐसा क्यों किया ?'

उस देवी ने उत्तर दिया - 'महाराज! आपको ये अमरूद बहुत अच्छे लगते हैं। हमने आपको जो खिलाने थे, तभी हमने बच्चों से ये छिपा कर पृथक् रख दिये।' ऐसा क्यों किया ? बच्चों को खिलाती देवी जी, तो हमें बड़ी ही प्रसन्नता होती। देवी बोली - 'महाराज! बच्चों को तो हम प्रभु कृपा से हर रोज खिलाते ही रहते हैं। आज आप खायेंगे तो हमको बहुत प्रसन्नता होगी,- और हमारा यह बड़ा सौभाग्य भी होगा।' सो ऐसे घर

सचमुच सुख के धाम-स्वर्गलोक ही होते हैं जहाँ कि मनुष्य स्वयं खा-पी कर, स्वयं पहन-ओढ़ कर, स्वयं आराम-विश्राम कर इतना सुखी-इतना प्रसन्न नहीं होता जितना कि दूसरों को आराम-विश्राम देकर वह प्रसन्न होता है। पति कुछ लाता है। पत्नी उसे पहनती-ओढ़ती, खाती-पीती वा घर में खुश-प्रसन्न हुई-हुई इधर से उधर, उधर से इधर आती जाती है तो पति यह सब देखकर प्रसन्न होता है। पत्नी कुछ बनाती है, कपड़े-लत्ते धोती है, पति के माता-पिता को अपने ही माँ-बाप समझ कर उन्हें बड़ी श्रद्धा से खिलाती-पिलाती है, पहनाती-ओढ़ाती है, पति को बड़े प्रेम से खिलाती-पिलाती, पहनाती-ओढ़ाती है, या बच्चों को लाड-प्यार से खिलाती-पिलाती, पहनाती-ओढ़ाती हैं, तो पति फूला नहीं समाता है। यह घर-परिवार भगवान् ने कितना सुन्दर बनाया हुआ है कि जिससे सभी एक स्नेह-लाड-प्यार के सूक्ष्म तन्तुओं से बन्धे हुए एक दूसरे की ओर खिंचे चले आते हैं। यह गृहस्थ बनता कैसे है, कहाँ से यह प्रारम्भ होता है ? इसका उत्तर देते हुए एक युवक वा एक व्यक्ति कहता है कि - 'हस्तं गृह्णामि' इसमें अपने जीवन साथी के रूप में मैं नर एक नारी का - मैं वर एक बधू का हाथ पकड़ता हूँ। वैसे ही नहीं वरन् शास्त्र की मर्यादाओं से, फ़िर उसके मन बचन और कर्म की सहमति से, नहीं-नहीं मैं यथा शक्ति इसमें उसके माता-पिता और अपने माता-पिता आदि संरक्षकों की भी सहमति लेने का प्रयास करता हूँ। क्योंकि विवाह में उन सब बड़े-बूढ़ों का, उन विद्वानों का, उन बन्धु-बान्धवों का, उन दोस्त-मित्रों का मुझे आशीर्वाद जो चाहिये, उनकी स्नेह पूर्वक दी हुई शुभ कामनाएँ जो मुझे चाहिएं

आदि-आदि। मेरी इस हस्तग्रहण प्रक्रिया को शास्त्रों में विद्वानों द्वारा 'पाणिग्रहण-संस्कार' कहा जाता है। उस बधू के हस्त को अपने हस्त में बन्द करने-ग्रहण करने से ही सम्भवतः कभी अंग्रेजी में मेरा **Husband** नाम पड़ गया है। फ़िर मैं वेदानुसार दिल से यह सोचता हूँ कि वह स्त्री 'मा अनु एतु' मेरा अनुगमन करे - मेरे पीछे चले - मेरे अनुकूल चले, और वह मेरे सदृश्य चले। अर्थात् वेद के शब्दों में वह 'पत्युरनुव्रता' होवे। अर्थात् मेरे जीवन में जो व्रत हो - जो श्रेष्ठ कर्म हो, जो उस अपने घर को आगे बढ़ाने और ऊपर उठाने का जो उत्तम व्रत हो-सङ्कल्प हो, उसके अनुसार चलकर नारी इस घर का निर्माण करे।

पर एक बात वेद में अन्यत्र नारी ने यह भी कही है कि-

अहं केतुरहं मूर्धाहमुग्रा विवाचनी।
ममेदनु क्रतुं पतिः सेहनाया उपाचरेत् ।।ऋ० १०.१५९.२।।

मैं केतु हूँ - मैं विदुषी हूँ - मैं घर का झण्डा हूँ - मैं घर में मूर्धा-शिरोवत् हूँ। मैं उग्र अर्थात् क्षत्राणी हूँ - शत्रुओं को मसलने वाली हूँ। मैं विवाचनी हूँ - वक्त्री हूँ - प्रवचन कर्त्री हूँ। अतः ऐसी स्थिति में (पतिः इत् मम क्रतुम् अनु उपाचरत्) पति ही मेरे क्रतु [क्रतुः प्रज्ञा कर्म च। क्रतुरिति यज्ञ नाम] अर्थात् मेरी प्रज्ञा-प्रकृष्ट बुद्धि के अनुकूल-अनुरूप आचरण करे, वा पति मेरे ही क्रतु सम् - कर्म के अनुरूप सत्कर्म करे, वा मेरे ही यज्ञमय शुभ कर्म, के अनुसार वह आचरण करे।

इससे ज्ञात हुआ कि घर में जो उत्तम व्रत वाला-उत्तम

बुद्धि वाला वा उत्तम कर्म वाला हो, अनुकरण उसी का होना चाहिये। क्योंकि घर का उत्थान उससे ही होगा। घर-परिवार में दोनों में से जिसके व्रत-वरणीय कर्म वा जिसके क्रतु-प्रज्ञा-बुद्धि वा सत्कर्म वा यज्ञ-मय शुभ कर्म होंगे, वही अपने पीछे घर को चला कर आगे ले जा सकता है - ऊपर उठा सकता है। सो यदि घर में ऐसी नारी आ जाए जो विदुषी भी हो, बुद्धि की कुशाग्र भी हो, व्यवहारों में निपुण भी हो, मन वचन कर्म से सच्ची-सुच्ची भी हो, सदा सबके हित में ही जो लगी रहती हो, हृदय और कर्मों में जिसकी पवित्रता समाई रहती हो, तो फ़िर ऐसी स्थिति में मनुष्य को चाहिये कि वह पति की बुद्धि के अनुसार वा उसके सत्कर्मों के अनुरूप क़र्म करे ताकि परिवार के उत्थान में विघ्न न पड़े। मैंने (लेखक ने) ऐसे अनेकों घर देखे हैं जहाँ कि नारी ऐसी होती है तो वहाँ फ़िर नर-मनुष्य ही हृदय से उसका अनुसरण-अनुकरण करते हैं। और वे कहते भी हैं कि इन्हीं के कारण से ही हमारे हाथों से शुभ कर्म हो जाते हैं। मैं ने एक़ पुस्तक उपनिषद् पर लिखी। सो जिस दम्पती ने इस को प्रकाशित किया, उनमें से पति बोला भाई साहब! मैं तो बहुत साधारण आदमी हूँ। इस घर-परिवार में आज जो आपको थोड़ी-बहुत कुछ अच्छाई या गुण दीखता है, वह सब मेरी इसी नारी के कारण है...। यदि हमारे हाथों से कुछ भूले-भटके कुछ शुभ कर्म हो जाता है तो उसका श्रेयः भी इसी को जाता है। आज मेरे घर में यदि अण्डे माँस शराब आदि कुछ नहीं है तो यह भी इसी का ही प्रताप है। एक बार मैं विदेश गया तो कुछ

विशेष सिग्रेट और बहुत बढ़िया शराब दोस्त-मित्रों के लिये लाया। घर आते ही इसने स्वाभाविक रूप से पूछा-"पति देव! यह क्या है ?" मैंने सोचा, यदि बताऊँगा तो इसको कष्ट होगा।" मैं चुप रहा, पर इसने पुनः-पुनः पूछा। मैंने कहा-"आप सुनेंगी तो आपको बहुत कष्ट होगा...।" वह समझ गई और मुझ से बोली-"पति देव! आज न मैं कुछ बना सकूँगी और न ही आपको कुछ खिला सकूँगी, तथा न ही मैं स्वयं कुछ खा सकूँगी। इसको तुरन्त बाहर फ़ैंक आओ, नहीं तो मेरी स्थिति खराब हो जायेगी।" यह सब सुनकर मैं उस सबको लेकर कहीं दे आया, तब घर आया। इससे यह बड़ी प्रसन्न हुई। बड़ी श्रद्धा से फ़िर इसने भोजन बनाया। पहले मुझे बड़े प्रेम से खिलाया, फ़िर स्वयं भी खाया-आदि। "सो मेरे घर के निर्माण का जो भी श्रेयः है यह सारा का सारा इसी को जाता है।" सो एक अच्छा पति वेदानुसार एक अच्छी विदुषी नारी को सामने रखकर उसका अनुकरण करता है। तभी तो उसका घर सुख का धाम-स्वर्गलोक-स्वर्गाश्रम बनता है।

इस घर-परिवार में, (वयं सं स्याम) हम सब सम हों - दुःख-सुख में, हानि-लाभ में, मान-अपमान में, आदर-निरादर में, अनुकूलता प्रतिकूलता में थोड़ा सम रहने का अभ्यास करें। क्योंकि इस घर-परिवार में थोड़ा सम रहने का अभ्यास करना भी अच्छा रहता है। अब चूंकि इसका नाम घर है तो कभी इसमें रूखी-सूखी भी खानी पड़ सकती है, कभी चुपड़ी हुई भी मिल सकती है। कभी इसमें दुःख भी आ सकते हैं, कभी सुख भी आ सकते हैं। कभी सर्दी भी आ सकती है तो कभी गर्मी और

बरसात भी आ सकती है, कभी घर में खाट वा पलंग भी सोने को मिल सकता है, कभी महिमान आ जाएँ तो टाट वा दरी पर भी सोना पड़ सकता है। कभी पाकिस्तान बनने पर एक बहन जी एवं एक भाई साहब मजबूरी में बेटी को नदी में बहा देने की स्थिति में भी आए, पर मोह ने दोनों को पुत्री नदी में न बहाने दी, और प्रभु कृपा से किसी और माँ के दूध से वह बच्ची जीवन लाभ कर सकी। और अब वे ही उसके माता-पिता उस बेटी की भी बेटी के विवाह की अब तैयारियाँ कर रहे हैं।

कभी बाप घर में बच्चों के लिये पर्याप्त फ़ल वा ड्राई फ्रूट लाकर बच्चों को खिला सकता है, पर कभी वह बच्चों को एक-सन्तरा लेकर देने का भी सोच नहीं पाता। ड्राई फ्रूट में भी मूँगफली खिला-खिला कर वह सन्तोष कर सकता है। वह भी इसलिये कि मूँगफ़ली वह स्वयं बेचता है, अन्यथा, पेट की अग्नि में दो चार रोटियों की आहुति पड़ जाए, वही बहुत है। सो इस प्रकार घर के उतार-चढ़ाव में थोड़ा बहुत सब सम रहने का भी अभ्यास करें, ताकि उनके जीवन में आए हुए दुःख वा अभाव के दिन उन्हें दुःखी एवं विचलित न कर सकें। अर्थात् वे दुःख के दिन भी उनके सहज ही व्यतीत हो जाएँ।

(अत्र निर्ऋतिः नः मा तारीत्, अराति उ [नः] मा तारीत्) इस घर-परिवार में रहते हुए-इस सुख के धाम-गृहस्थाश्रम-स्वर्गाश्रम में रहते हुए मुझे निर्ऋतिः-दुःख-कष्ट-आपत्ति-विपत्ति-मुसीबत प्रथम तो प्राप्त ही न हो। पर अगर प्राप्त हो जाए तो फ़िर मैं बड़ी हिम्मत और धैर्य से उसका सामना करूँ। जालन्धर के एक वृद्ध सज्जन ने मुझे बताया कि विवाह से पूर्व मैंने दुःख ही

दुःख-कष्ट ही कष्ट देखे, पर विवाह के उपरान्त मेरी पत्नी ने नौ बच्चों को जन्म दिया। उनमें से एक तो आजीवन ब्रह्मचारी रहा। आठों के उसने विवाह किये। पोते-पोतियाँ, दोहते-दोहतियाँ भी सब देखीं। उनके भी उन्होंने अनेकों संस्कार देखे। पर इस लम्बे काल में न ही उन्होंने इनका कोई दुःख देखा और न ही मैंने। पर अब उसका देहावसन हो गया है। अब लगता है कि सम्भवतः फ़िर मुझे कष्ट ही कष्ट देखने पड़ेंगे। बड़ी भाग्यवती थी वह। कुर्सी पर बैठे-बैठे सहज ही उसकी मृत्यु हुई। सारे जीवन में न ही उसने अपने पर और न ही अपने कुटुम्ब पर कुछ कष्ट विशेष देखा। इस वेद मन्त्र के अनुसार तो शायद उसी की ही यह इच्छा पूर्ण हुई हो कि - 'अत्र नः निर्ऋतिः मा तारीत्' - इस गृहस्थ आश्रम में हम पर कोई दुःख न आए-कष्ट न आए - मुसीबत न आए। पर उनके पति का कहना था कि सारा जीवन ही वे ऐसे उत्तम कर्म करती रही कि जिससे वह सदा मेरे लिये भी प्रेरणा की स्रोत बनी रही। दीन-दुःखी, भूखे-नंगे व्यक्तियों पर तो उनको बड़ी दया आती थी और फ़िर वह यथाशक्ति उनके लिये कुछ न कुछ करती ही रहती थी, इत्यादि-इत्यादि।

सो अब लगता है कि मुझ पर फ़िर सतत कष्ट ही कष्ट आयेंगे। वे दान-पुण्य बहुत करती थी। बहुओं से खूब कपड़े सिलवाती थी, भोजन पकवाती थी और फ़िर स्वयं उनको अपने साथ गाड़ी पर बैठा-बैठा कर स्थान-स्थान पर लेजाकर वितरित करती रहती थी। ऐसा लगता है कि जैसे उनके पुण्य-कर्मों ने ही सारा जीवन उन्हें फूलों के समान सदा प्रसन्न और अपने गुणों

की सुगन्ध बिखेरते हुए रखा। ऐसे एक सज्जन ७३ वर्ष तक जिये। वे डिप्टी कलक्टर के पद से रिटायर हुए। बड़ा ही संयमी और सुव्यवस्थित एवं सुनियमित उनका जीवन था। वे कहते थे कि सामान्य सी खाँसी-जुकाम आदि को छोड़ कर मैं सारा जीवन स्वस्थ रहा। अन्त में पैर में धोती उलझ गई सड़क पार करते हुए और उसी में ट्रक के नीचे आकर उनकी मृत्यु हो गई। यों सारा जीवन उनका बड़ा ही सुन्दर और सुखद व्यतीत हुआ।

तारीत् में -'तृ प्लवन सन्तरणे च' इस धात्वर्थ के अनुसार प्रभु से एक गृहस्थ प्रार्थना करता है कि - (अत्र निर्ऋतिः नः मा तारीत्) इस गृहस्थाश्रम में न कोई शारीरिक एवं मानसिक कष्ट हमारी जीवन रूप सरिता-नदी में न कूदे-फ़ान्दे और न उसमें तैरे। तात्पर्य यह है कि कई कष्ट हम पर ऐसे आते हैं कि जो बिल्कुल ही सामान्य से होते हैं, जो हमारे ऊपर से बन्दर की तरह कूद-फ़ाँद कर निकल जाते हैं। जैसे छोटी सी नाली वा कुल्या को कोई कूद-फ़ान्द लेता है। ऐसे ही ज़रा थकावट हुई विश्राम किया और थकावट दूर हो गई। ज़रा सर्दी लगी, गुरुकुल की चाय वा तुलसी अद्रकादि की चाय पी, या हलकी सी दवा ली और ठीक हो गए। ज्वर भी यदि आया और ज़रा से परहेज और ज़रा सी औषध से वह चला गया। पर कई रोग ऐसे आते हैं कि जैसे कोई नदी में - तड़ाग में कूद जाता है और उसमें हाथ-पैर मारता हुआ सारे जल को ही उथल-पुथल करता हुआ तैर कर पार हो जाता है। ऐसे ही कोई रोग हमारे भीतर ऐसा भी आ जाता है कि जो शारीरिक वा मानसिक था कोई भी हो

सकता है, जो सारे शरीर में फ़ैल कर हमारे सारे शरीर को हिला कर रख देता है, उसको झकझोर के रख देता है, तथा बड़ी कठिनाई से अत्यन्त संयम एवं औषध-उपचार से वह कहीं शरीर से बाहर निकल पाता है। जैसे एक परिवार में घर के बड़े बेटे पर ऐसा शारीरिक कष्ट आया कि वह वर्ष भर तक अपने कार्य व्यापारों को भी नहीं कर सका। यहाँ तक कि वह शौचादि के लिये भी यथोचित् स्थान पर नहीं जा सकता था। सो अब कुछ प्रभु कृपा एवं अपने पर्याप्त औषधोपचार के बाद थोड़ा बहुत अपना कुछ कार्य व्यापार भी कर पा रहा है। ऐसा परिवार में सबको लग रहा है, जैसे कि उसको पुनः नया जीवन मिला हो। ऐसे ही एक व्यक्ति को किसी मानस रोग ने आ घेरा और १५ वर्ष तक उस मानस रोग के प्रभाव से प्रभावित शरीर की तो वह चिकित्सा करता रहा, पर मन की ओर उसने कभी ध्यान नहीं दिया। अन्त में किसी साधु-सन्त ने उसका वह रोग जो उसमें घुसा हुआ था और उसके तन-मन में उथल-पुथल मचाए हुए था, उसको बतलाया। केवल मानसिक उस वृत्ति के छोड़ते ही उसके मन से उस बात के तेर कर बाहर निकलते ही फ़िर जहाँ उसका मन ठीक हुआ, वहाँ उसका तन भी दुरुस्त-ठीक होते ही वह तन्दुरुस्त हो गया। जो रोग हमारे भीतर घुस जाते हैं, वे हमको झकझोर कर रख देते हैं, वे हमको हैरान-परेशान कर देते हैं, वे हमको अत्यन्त कृश एवं कमजोर कर देते हैं, हमको सुखा कर काँटा बना देते हैं। वस्तुतः वे बड़े परिश्रम से कहीं फ़िर हमारे तन-मन से निकल कर हमें रोग से मुक्त कर स्वस्थ

कर देते हैं। जैसे कई बार कई व्यक्ति तालाब या दरिया में घुस कर निकलते ही नहीं। ऐसे ही कई बार तन-मन में घुसा हुआ रोग भी बाहर निकलता ही नहीं। अनेकों पेथियों से, अनेकों डाक्टर वैद्य हकीमों से चिकित्सा कराने पर भी वे आधि-व्याधियाँ हमको छोड़ती ही नहीं-हम में से वे बाहर निकलती ही नहीं। होम्योपेथी, एलोपेथी-नेचरोपेथी, जल चिकित्सा, आयुर्विज्ञान, यज्ञ चिकित्सा आदि नाना उपायों से भी हमारा पिण्ड वे रोग छोड़ते ही नहीं - वे बाहर निकलते ही नहीं। ऐसे में वे रोग हमारे भीतर से जाते ही नहीं। नाना विध जप-तप-व्रत-उपवास-प्रार्थना-उपासना करने पर भी वे रोग जाते ही नहीं। अन्त में वे रोग हमें जैसे आतप - धूप ताल-तलैय्यों को, सरित-सरिताओं को सुखा ही डालती है, ऐसे ही ये रोग हमारे तन को तबाह करके ही, नष्ट-समाप्त करके ही स्वयं मरते-समाप्त होते हैं। एक नारी जो डायबिटीज-मधुमेह से अत्यन्त पीड़ित है, उसके पति महात्मा हैं-विद्वान् हैं-वानप्रस्थ हैं। उसने एक दिन अपने पति से कहा-'आप अनेकों को दवा बताते हैं-उनको आशीर्वाद देते हैं-उन्हें वह आशीर्वाद लगता भी है, और वे सब प्रकार से स्वस्थ, सशक्त हो भी जाते हैं।' तो फ़िर आप मुझे क्यों आशीर्वाद नहीं देते वा मुझे क्यों नहीं दवा बताते कि-'मेरा यह रोग कब मुझे छोड़ेगा ? वे बोले-'देवी! मैं इन्हीं के समान तेरे लिये भी बहुत कुछ कर चुका हूँ, और कर भी रहा हूँ। सो तुम्हारा यह रोग भी जायेगा अवश्य, पर यह तुमको ले के जायेगा, यह तुमको खत्म करके खत्म होगा, यह तुम्हें चिता में जलाकर तुम्हारे शरीर का

पीछा छोड़ेगा। जब शरीर ही नहीं रहेगा तो फ़िर यह रोग भी ठिकाना-आश्रय समाप्त हो जाने से कहाँ रह पायेगा!'

महात्मा अमर स्वामी जी के पास एक संन्यासिन गई और बोली-'स्वामी जी! मुझे दस्त बहुत होते हैं-एक-एक दिन में अनेकों बार जाना पड़ता है...।' स्वामी जी बोले - 'देवी जी! ऐसे एक और व्यक्ति को भी बहुत अधिक दस्त होते थे। वह भी आप की तरह बहुत दुःखी रहता था, और सदा इनसे हैरान-परेशान रहता था...।' वह संन्यासिन बोली- 'स्वामी जी! फ़िर उसका क्या हुआ ?' स्वामी जी बोले - 'देवी! वह तो बेचारा फ़िर आखिर मर ही गया।' वे बोली - 'महाराज! तो फ़िर मेरा क्या होगा ?' देवी! तेरा भी आखिर वही होगा जो कि उसका हुआ और तब तेरे भी रोग का वैसे ही अन्त होगा, जैसे कि उसके रोग का हुआ। अर्थात् तब न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी'। तब वे देवी भी हँस पड़ी और वे स्वामी जी भी।

तो इस प्रकार इस मन्त्र में गृहस्थाश्रम रूप स्वर्ग के वासी उस प्यारे प्रभु से प्रार्थना करते हैं और वैसा ही पुरुषार्थ भी करते हैं कि - 'हे प्रभुवर! इस गृहस्थाश्रम रूप स्वर्गाश्रम में कोई 'निर्ऋतिः' - शारीरिक वा मानसिक कष्ट, अर्थात् कोई आधि, कोई व्याधि 'नः मा तारीत्' हमारे जीवन के ऊपर से न कूदे-फ़ान्दे और न ही हमारे भीतर प्रवेश करे। यों करके न हमको वह झकझोर कर रख दे, न वह हमें हिला-डुला कर रख दे, न वह हमको हैरान-परेशान करे, न ही वह हमारा तहस-नहस करे। हाँ मृत्यु तो अवश्यम्भावी है, उसने तो एक न एक दिन आना

ही है। पर हमारी वह मृत्यु भी इतनी सहज हो कि हमें लगे कि जैसे वह कष्ट भी हम पर आया ही न हो, या ऐसा ही कि हमको इस जन्म-मरण के चक्र से ही फ़िर मुक्त कर देने वाला हो।

ऐसे ही स्वर्गाश्रम रूप गृहस्थाश्रम के वासी प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि - 'हे प्रभो!' 'अरातिः उ नः मा तारींत्।' अराति-अर्थात् ये काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहँकार आदि शत्रु भी न ही हमारे ऊपर से कूदे-फ़ान्दे और न हीं हमारे भीतर कूदकर नदी तड़ाग में कूदे हुए व्यक्ति की तरह हमारे तन रूप नदी-तड़ाग को झकझोर दें। कई बार ये काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहँकार आदि हमारे ऊपर से ऐसे कूद-फ़ान्द जाते हैं जैसे कि कोई किसी नाली गर्त वा कुल्या को कूद-फ़ाँद जाते हैं। अर्थात् ये भाव हम में आते हैं और अपनी छाया मात्र डाल कर हमारे ऊपर से गुज़र जाते हैं। पर कई बार यह काम, यह क्रोध, यह लोभ, यह मोह, यह अहँकार हमारे भीतर ऐसे घुस जाते हैं कि फ़िर हम बड़े-बड़े जप-तप भी करते हैं, व्रतोपवास भी करते हैं, मीठे, और नमक को छोड़ कर अपनी रसना को भी नियन्त्रण में रखते हैं, बड़े अच्छे-अच्छे ज्ञान-वैराग्य के भजन भी गाते हैं, उनको श्रद्धा-भक्ति से गा-गा कर हम झूमते भी हैं, आसन विशेष में बैठकर नानाविध प्राणायामों का अभ्यास भी करते हैं, भक्ति भावों में भर कर आँसू भी बहाते हैं, नानाविध पश्चात्तापों को करते हुए रोते भी हैं, पर फ़िर भी हमारे भीतर का यह काम, यह क्रोध, यह लोभ, यह मोह, यह अहँकार हमारे निकाले निकलता ही नहीं। यह हमारे ही भीतर रहते हुए-हमारे ही आश्रय

पलते हुए भी ये हमें बेशर्म और बेहया भी बना जाते हैं, निर्लज और निस्तेज भी कर जाते हैं, हमको ही हिला-डुला कर ऐसा पटक जाते हैं कि फ़िर उठना चाहते हुए भी हम उठ नहीं पाते। ये तो एक बार हमारे सब व्रत-नियमों को, हमारे सब जप-तपों को, हमारे सब व्रत-उपवासों को, हमारे सब नियम-निश्चयों को, हमारे सब ज्ञान-वैराग्यों के स्तम्भों को ऐसा झकझोर जाते हैं कि फ़िर हमारा बना बनाया सब भवन ध्वस्त हो जाता है। सो अपने आप में ऐसे तो प्रायः ये दीखते नहीं, पर जब ये झञ्झावात की तरह आ जाते हैं, तो फ़िर ये हमारा वह हाल कर जाते हैं कि सुनाए नहीं सुनाया जा सकता, बताए नहीं बताया जा सकता। इसका अनुभव प्रायः इस जग में ऋषि-महर्षियों को ज्ञानी-विद्वानों को ही नहीं वरन् सबको रहता है। पर फ़िर भी स्वर्गाश्रम रूप गृहस्थाश्रम के वासियों को इन सब अराति भावों से - अदान भावों से जहाँ सतर्क रहना चाहिये, वहाँ उन्हें, ये न आएँ, ऐसा पुरुषार्थ भी करते रहना चाहिये। यदि ये फ़िर भी कभी आ ही जाएँ तो ऊँचे उद्बोधनों से जहाँ इन्हें निकाल बाहर करने का प्रयास करना चाहिये वहाँ इस कार्य के लिये प्यारे प्रभु से भी प्रार्थना करनी चाहिये। क्योंकि जहाँ हमारा पुरुषार्थ होगा-पुरुषार्थ पूर्वक प्रार्थना होगी और प्यारे प्रभु की कृपा होगी तो एक न एक दिन इस काम क्रोध-लोभ-मोह रूप शत्रुओं पर भी हम विजय पा पायेंगे।

अब कई बार जो काम ऐसा हो कि मनुष्य के ऊपर से कूद-फ़ाँद जाए, अर्थात् हमारे में उसका भाव आया भी और चला भी गया, हमारी ही दीवार पर बन्दर आया भी और दूसरी

दीवार पर कूद कर चला भी गया, तो उससे इतनी हानि नहीं होती, पर अगर वह बन्दर घर में उतर कर नीचे आ घुसा तो फ़िर वह कुछ उत्पात मचाए बिना नहीं रहेगा। ऐसे ही जो 'काम-वासना भीतर घुस गई और अब ज्ञान-वैराग्य के गीतों से भी, नाना विध मन्त्रों के, श्लोकों के उच्चारण से भी अब वह जाती नहीं, तो वह तो फ़िर मन-तन में उथल-पुथल मचा कर हमारी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को हिला-डुला कर उनसे ऐसे सोच-विचार करायेगी, ऐसे कर्म करायेगी, कि फ़िर हमारा पतन ही होगा। हम तब अपने व्रत-नियमों में हिल जायेंगे, और हिल कर डुल जायेंगे। और तब हमसे वह कुछ हो जायेगा जिसको कि सहजावस्था में हमें कहना और करना भी बिल्कुल अच्छा नहीं समझते ...।

ऐसे ही कई बार हमें क्रोध आता है और हम पर आकर हम पर से कूद-फ़ाँद जाता है। परन्तु जब यह हमारे भीतर प्रवेश कर जाता है और प्रयत्न करने पर भी निकाले नहीं निकलता, तो तब क्रोध के मारे हमारी आँखें लाल हो जाती हैं, हमारे दान्त भिंच जाते हैं, हमारा माथा तन जाता है, हमारी मुट्ठियाँ बन्द होकर तन जाती हैं, और फ़िर हम क्रोध में आकर वह कह जाते हैं जो कि हमें नहीं कहना चाहिये, हम वह कर जाते हैं कि जो कुछ कि हमें नहीं करना चाहिये। फ़िर सिवाए पश्चात्ताप के और कुछ हम कर ही नहीं पाते इत्यादि...।

सो ऐसे काम क्रोध आदि अराति भावों से जहाँ तक सम्भव हो स्वर्गाश्रम के वासी स्वयं सभी महानुभाव बचने का हार्दिक प्रयास करें। उनके लिये वेद शास्त्रों का अध्ययन भी करें

वा उनका श्रवण करें। अच्छे-अच्छे भजन गीत गाएँ और अपनी उत्तम दिव्य वृत्तियों से इन काम-क्रोध आदि अराति भावों को अपने से परे-परे रखें, या अपने आप को इनसे परे रखने का जहाँ पुरुषार्थ करें, वहाँ प्रभु से भी इसके लिये प्रार्थना करें।

'अरातिः' का एक अर्थ है - अदान भाव। सो स्वर्गाश्रम रूप गृहस्थाश्रम के वासी भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि - 'हे प्रभो! (अरातिः उ नः मा तारीत्) अदान भाव भी हमें न प्राप्त हो, अर्थात् अदानभाव भी न ही हमारे ऊपर से कूदे-फ़ाँदे और न ही हमारे भीतर प्रविष्ट होकर हमें अपने लक्ष्य से च्युत करे।

'रातिः' का अर्थ होता है दान-दानभाव। स्वर्गाश्रम रूप गृहस्थाश्रम के वासियों में यह दानभाव सदा बना रहता है, तभी तो वे अपने प्राणप्रिय प्रभु के समीप बैठते हैं और तब वे अपने प्राणप्रिय प्रभु में अपने आपको ही होम देते हैं-उसमें अपने आपको ही समर्पित कर देते हैं। जब वे इस देवयज्ञ में बैठते हैं तो उसमें ये समिधाओं, सामग्रियों तथा घृत-भात-मोहनभोग आदि-आदि पदार्थों को होमते हैं। जब ये पितृयज्ञ में अपने माता-पिता, दादी-दादा रूप पितरों के समीप बैठते हैं, तो उनके चरणों में अपना तन-मन-धन-वस्त्र-भोजन-औषध आदि होम कर उनकी आव-भगत करते हैं। अतिथियज्ञ में ये अतिथियों को भोजन कराते हैं, उनको यथाशक्ति सर्वविध सुख-सुविधाएँ प्रदान करते हैं। बलिवैश्वदेव यज्ञ में ये दीन-दुखियों की भी नित्य प्रति सहायता करते हैं, उनको भी ये सब तरह का सहयोग देते हैं।

यह रति भाव-यह दानभाव यदि इन स्वर्गाश्रम रूप गृहस्थाश्रम के वासियों में न रहे तो फ़िर इन ब्रह्मचारियों को,

इन वानप्रस्थों को, और इन संन्यासियों को, भला कौन खिलायेगा-पिलायेगा, पहनायेगा-ओढ़ायेगा ? उनकी सेवा-शुश्रूषा भी फ़िर भला कौन करेगा ? इनका औषधोपचार भी फ़िर भला कौन करेगा ? इन ब्रह्मचारियों को यह सब सुख-सुविधाएँ नहीं मिलेंगी तो इन ज्ञान-विज्ञानों को फ़िर भला कौन पढ़ेगा और कौन पढ़ायेगा, फ़िर इन संन्यासियों की आव-भगत नहीं होगी, इनको कोई पूछेगा नहीं, तो फ़िर वैदिक धर्म का प्रचार कौन करेगा ? फ़िर इन बिगड़े-तिगड़े लोगों के जीवन का सुधार कैसे होगा और कौन करेगा ? अतः सारा जगत् इसी राति भाव-इसी दान भाव पर ही टिका हुआ है। यदि मुख अपने में आए हुए भोजन को अपने पास ही रख लेवे, वैश्य रूप उदर को न दे, और उदर उसको पीस कर उसका रस, रक्त आदि निकालकर उसको ब्राह्मण-मस्तिष्क आदि को न दे तो ज्ञान का संग्रह कौन करे, यदि वह क्षत्रिय रूप भुजाओं को न दे तो फ़िर ये शरीर की क्षत्रिय रूप भुजायें रक्षा कैसे करें ? उरू और जंघा को शक्ति न दे, तो वे अन्नादि खाद्य एवं पेय पदार्थों के लिये, पुरुषार्थ कैसे करें ? यदि चरणों को शक्ति न मिले तो फ़िर वे हम ब्राह्मणों को पढ़ाने के लिये विद्यालय कैसे ले चलें ? और छात्रों को पढ़ने के लिये विद्यालय कैसे ले चलें ? क्षत्रियों को राष्ट्र रक्षार्थ देश की सीमाओं पर कैसे ले चलें ? और वैश्यों को व्यापार के अर्थ वस्तुओं को इधर से उधर और उधर से इधर लाने के लिये कैसे एक स्थान से दूसरे स्थान और दूसरे स्थान से तीसरे स्थान पर ले चलें ? यदि यह रातिभाव शरीर में न रहे, तो यह शरीर नहीं चले, घर-परिवार में न रहे, तो यह

घर-परिवार न चले, समाज में भी न रहे तो यह समाज एक पग भी आगे न चल सके, और राष्ट्र में न रहे तो राष्ट्र एक भी कदम आगे न बढ़े, संसार में न रहे तो यह संसार आगे न चले। क्योंकि यह धरती, यह चन्द्र, यह हवा, यह पानी, यह अन्न आदि-आदि यदि ये सब इस दानभाव को छोड़ दें, तो यह जगत् उसी दिन ही समाप्त हो जाय। क्योंकि चन्द्र अपने रस से सब पदार्थों को रसमय बनाता है, सूर्य उन्हें अपने तेज से पकाता है। तभी हम कुछ खा-पीकर जी पाते हैं। मेघ में दान भाव न हो तो हमारे जल के कोश सब समाप्त हो जाएँ और फ़िर हम प्यासे ही मर जाएँ; धरती माता अन्न आदि खाद्य पदार्थ न दे तो फ़िर हम भूखे ही मर जाएँ; धरती माता कपास न दे, ये भेड़ें ऊन न दें तो हम ठण्ड से ठण्डे पड़ जाएँ; आदि-आदि।

सो हम में यह अराति भाव भी न रहे अर्थात् राति भाव रहे - दान भाव रहे। इस प्रकार घर में जाया अपनी देनों से पति को कृतार्थ करे, पति - अपने दानों से - अपने राति भावों से पत्नी को कृतार्थ करे। दोनों मिलकर अपने प्रिय बच्चों को, और बच्चे अपने पूज्य वृद्ध माता-पिताओं को अपने दान-प्रदानों से कृतार्थ करें। बच्चे अपनी श्रद्धाओं और उत्तम आचरणों से अपने माता-पिता और अपने दादी-दादाओं को प्रसन्न करें। माता-पिता अपने आशीर्वचनों के दानों से उन सब को निहाल करें, तभी तो घर सुख का धाम-स्वर्गाश्रम बनेगा।

ऐसे ही राष्ट्र में ब्राह्मण वर्ग अपने ज्ञान-विज्ञान के दानों से समाज को कृतार्थ करे, क्षत्रिय वर्ग अपने रक्षण-संरक्षण से समाज

को आप्लावित करें, वैश्य अपने उत्तम खाद्य एवं पेय पदार्थों से, अपने बनाए हुए नानाविध कपड़े-लत्तों से, जूते-चप्पलों से, साईकिल-स्कूटरों आदि-आदि साधनों की देन से समाज को समृद्ध करे, शूद्रवर्ण के लोग अपनी सेवाओं से सबको कृतार्थ करें। तो इस प्रकार इन परस्पर के रातिभावों से समाज समृद्ध होगा, खुशहाल होगा, निहाल होगा। इसीलिये वेद में गृहस्थाश्रम के वासी प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि उनके इन घरों में अराति भाव-अदानभाव न रहे। क्योंकि राति भाव ही वह भाव हैं जिसमें घर के सभी सदस्य अपने-अपने दानों से घर को स्वर्ग-सुख का धाम बनाते हैं।

सो प्रभु तो हमें उस स्वर्ग लोक-सुख के धाम को ही प्राप्त कराना चाहता है जहाँ हम अपने यज्ञमंय उत्तम कर्मों में सहयोग करने वाली पत्नी और उससे उत्पन्न हुए पुत्र-पुत्रियों के साथ अर्थात् हम अपनी स्त्री, पुत्र-पुत्रियों के साथ मिल कर रहते हैं - एक होकर रहते हैं, खरबूजे की तरह बाहर से पृथक्-पृथक् दीखते हुए भी भीतर से एक रहते हैं - मिलकर एक बने हुए होते हैं। हम सुख-दुःख, हानि-लाभ, अनुकूलता-प्रतिकूलता आदि-आदि में भी इस घर में जहाँ हम रहने का अभ्यास करते हैं, वहाँ हम परस्पर मिल कर रहने की भी कोशिश करते हैं। यह घर ऐसा है कि जिसमें मैं पुरुष-वर एक वधू का जीवन साथी के रूप में वरण कर उसका हस्तग्रहण करता हूँ, अर्थात् उसका पाणिग्रहण करता हूँ। और फ़िर मैं चाहता हूँ, कि उस घर-परिवार में रहती हुई वह नारी 'मा अनु एतु' मेरे पीछे चले, वह मेरी अनुव्रता होकर वह मेरे व्रतों नियमों के अनुकूल चलने

वाली हो। इस तरह हम मिलकर ऐसे साथ-साथ उठें-बैठें, खायें-पीयें, पहने-ओढें, और ऐसे एक-दूसरे के सहायक बनें, ऐसा यत्न करें, ऐसी प्रभु से प्रार्थना करें कि हम सब पर जहाँ तक भी सम्भव हो, न ही कोई शारीरिक और न ही कोई मानसिक कष्ट आए। यदि आ भी जाए तो फ़िर हम सब मिलकर उस कष्ट-आपत्ति से मुक्त होने का हार्दिक प्रयास करें। हम हृदय से प्रयास करें कि इस स्वर्गाश्रमरूप गृहस्थाश्रम में ये काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहँकार आदि कभी अति को न प्राप्त हो जाएँ। क्योंकि जहाँ इनमें अति होती है वहाँ फ़िर हम सब वहाँ लड़ते-झगड़ते और बर्बाद होते रहते हैं। अतः हमें इनकी अति से सदा बचने का यथाशक्ति प्रयास करना चाहिये।

हम सब में परस्पर अराति भाव न हो - अदान भाव न हो। अर्थात् हम परस्पर एक दूसरे के प्रति सदा दानभाव से भरे रहें,, एक-दूसरे के प्रति सदा सहायता-सहयोग के भावों से भरे रहें, एक दूसरे का हित-सुहित करने की भावनाओं से भरे रहें, एक-दूसरे को ऊपर उठाने और आगे बढ़ाने के उत्तम भावों से भरे रहें। इससे निश्चित ही हमारा वह घर-परिवार सदा सुख का धाम-सदा स्वर्गाश्रम-हमेशा एक-दूसरे को सुख पहुँचाने वाला घर बना रहेगा। तब जहाँ हमारा यह लोक सुखरूप शान्तिमय बनेगा, वहाँ हम सब अपने, परलोक का भी सुचिन्तन कर हम अपने इस जीवन को भूमिका रूप में आनन्दमय बना सकने में भी समर्थ हो सकेंगे। इस प्रकार हमारा यह सुख का धाम स्वर्गाश्रम-गृहस्थाश्रम मोक्षधाम की सुदृढ़ आधारशिला भी बन सकेगी।

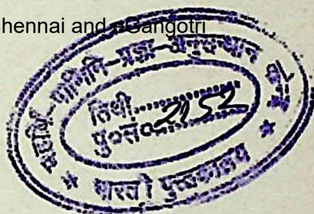
"श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" द्वारा श्रद्धा पूर्वक दान देने वाले दानी महानुभावों के साहयोग से लेखक की प्रकाशित पुस्तकें—

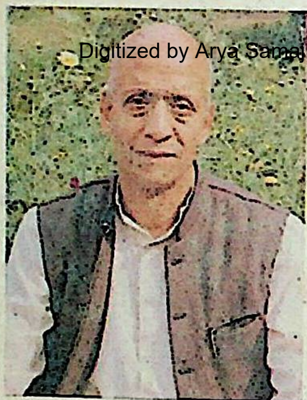
क्र. सं.	नाम पुस्तक	प्र. सं.	द्वि. सं.	तृ. सं.	च. सं.
१	प्रार्थना सुमन, भाग-१	११००	२०००	४०००	४०००
२	कौन चैन की नींद नहीं सो सकते और उसके उपाय	२०००	२०००	४०००	४०००
	पं. सं. ४००० ष. सं. ४००० स. सं. ४००० अ. सं. ४०००				
३	वेद सुधा, भाग-१	२०००	४०००	४०००	
४	विदुर जी की दृष्टि में बुद्धिमान् कौन ? भाग - १	२०००	४०००	४०००	४०००
५	महान् विदुर के महान् उपदेश	२०००	४०००	४०००	
६	वेद सुधा, भाग - २	२०००	४०००	४०००	
७	विनय सुमन, भाग - १	२०००	४०००	४०००	
८	प्रार्थना प्रदीप, भाग - १	२०००	४०००	४०००	
९	प्रार्थन प्रसून, भाग - १	२०००	४०००	४०००	
१०	प्रार्थना सुमन, भाग - 2	२०००	४०००	४०००	
११	विनय सुमन, भाग - 2	२०००	४०००	४०००	
१२	अनन्त की ओर	२०००	४०००	४०००	४०००
	पं. सं.	४०००			
१३	वैदिक पुष्पाञ्जलि, भाग - १	२०००	२०००		
१४	वैदिक पुष्पाञ्जलि, भाग - २	२०००			
१५	वैदिक पुष्पाञ्जलि, भाग - ३	२०००			
१६	वैदिक पुष्पाञ्जलि, भाग - ४	४०००			
१७	वैदिक गृहस्थ आश्रम (सुखी गृहस्थ-दाम्पत्य जीवन)	३०००	४०००	४०००	४०००
	पं. सं.	४०००			
१८	प्रभात वन्दन	३०००	४०००	४०००	
१९	शयन विनय	४०००	४०००		
२०	वेदोपदेश, भाग - १	४०००	३०००	४०००	
२१	वैदिक रश्मियाँ, भाग - १	४०००	४०००		
२२	विनय सुमन, भाग - ३	३०००	४०००		
२३	विदुर जी की दृष्टि में बुद्धिमान् कौन ? भाग - २	४०००	४०००	४०००	
२४	वैदिक आदर्श परिवार, भाग - १	३०००	४०००	४०००	

२५	वैदिक रश्मियाँ, भाग - २	३०००	४०००	
२६	ब्रह्मयज्ञ (वैदिक संध्या)	४०००	४०००	
२७	वैदिक रश्मियाँ, भाग - ३	३०००	४०००	
२८	पावमानी 'वरदा वेदमाता'	४०००	४०००	
२९	यम-नियम (१)	४०००	४०००	४०००
३०	(जीवन गाथा, माता भगवती ज़ी)	४०००	३०००	४०००
३१	ईशोपनिशद	४०००	४०००	
३२	नचिकेता के तीन वर	४०००	४०००	
३३	याज्ञवल्क्य मैत्रेयी सम्वाद	४०००	४०००	
३४	यज्ञ सुधा	४०००		
३५	पावन धारा	४०००	४०००	
३६	कहाँ है वह ?	४०००	४०००	
३७	वैदिक रश्मियाँ, भाग-४	४०००		
३८	भक्ति भरे भजन-एक लघु संग्रह	४०००	४०००	
३९	केनोपनिषद्	४०००		
४०	अष्टाङ्ग योग	४०००	४०००	
४१	यज्ञ सुधा (संक्षिप्त)	४०००		
४२	क्रिया योग	४०००	४०००	
४३	श्रद्धा	४०००	४०००	
४४	दैनिक अग्निहोत्र-अर्थ, व्याख्या	४०००		
४५	"दान दिये धन ना घटे"	४०००	४०००	
४६	जुआ मत खेलो, पुरुषार्थ करो,	४०००		
४७	वैदिक रश्मियाँ, भाग - ५	४०००		
४८	कौन तुझे भजते हैं ?	४०००		
४९	सुख का धाम, स्वगार्पज्ञम गृहस्थाश्रम	४०००		
५०	भक्त और भगवान्	४०००		
५१	वेदाध्ययन, भाग - १	४०००		
५२	वेदाध्ययन, भाग - २	४०००		
६०	वेदाध्ययन, भाग - १०	४०००		
६१	ईशवर ! मुझे सुखी कर।	४०००		
६२	व्यावहारिक योग (Practical Yoga)	४०००		
६३	अमृतवाणी, भाग-१	४०००		
६४	आमृतवाणी, भाग-२	४०००		

आङ्ग्ल भाषा में प्रकाशित साहित्य

1	Quest for the Infinite	2000





वेदरत्न प्रो. रामप्रसाद वेदालंकार,
उपकुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

जन्मतिथि : ७–१-१९३६
जन्म स्थान : थाना, मलाकण्ड एजेन्सी, जिला-मरदान, फ्रन्टियर (वर्तमान पाकिस्तान)
पिता का नाम : श्री गंगाविशन जी

* **शिक्षा :** गवर्नमेंट हाई स्कूल थाना; आदर्श हाई स्कूल, चन्दौसी; श्यामसुन्दर मेमोरियल हाई स्कूल चन्दौसी; दयानन्दोपदेशक महाविद्यालय, यमुनानगर; गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

* **उपाधियाँ :** —"सिद्धान्त भूषण" एवं "सिद्धान्त शिरोमणि" द्वारा-दयानन्दोपदेशक महाविद्यालय, यमुनानगर
—"वेदालंकार" एम.ए. वैदिक साहित्य, द्वारा-गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

* **प्रचार कार्य क्षेत्र:** उत्तर प्रदेश, दिल्ली, मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, जम्मू, बिहार, राजस्थान, महाराष्ट्र (बम्बई), गुजरात, नेपाल, अमेरिका आदि

* **अध्यापन:** दयानन्दोपदेशक महाविद्यालय, यमुनानगर; गुरुकुल झज्झर, हरियाणा; गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार—प्रोफेसर वेदविभाग। वर्तमान पद-आचार्य एवं कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार। डेढ़ वर्ष कुलपति पद पर कार्य किया।

* **सम्मान एवं पुरस्कार :**
  * आचार्य गोवर्धन शास्त्री स्मृति पुरस्कार (१९८१) से सम्मानित एवं पुरस्कृत,
    —द्वारा संगढ़ विद्या सभा ट्रस्ट, जयपुर।
  ** आर्य साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट सेवाओं के उपलक्ष्य में १९८३ में सम्मानित, पुरस्कृत।
    —द्वारा महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी समारोह समिति, अजमेर।
  *** "वेद रत्न"— मानद उपाधि, १९८४ में सम्मानित—*द्वारा-विश्ववेद परिषद।*
  **** "शान्ति पुरस्कार से १५ अगस्त १९९३ में सम्मानित एवं पुरस्कृत
    द्वारा-आर्य समाज शालीमार बाग, नई दिल्ली।

* **लेखन व प्रकाशन :** १२ पुस्तकें एवं पत्रिकाओं में लेख आदि।